GISI Impact Factor 0.2310
मार्च-अप्रैल २०१४
वर्ष-८ अंक-२
ISSN 0973-9777
ijraeditor@yahoo.in

MPASVO

IJRA

भारतीय शोध पत्रिका

आन्वीक्षिकी

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

प्रकाशन
एम.पी.ए.एस.वी.ओ. द्वारा आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित
अन्य सहसंयोजन
* सार्कः अन्तर्राष्ट्रीय शोध-पत्रिका
* एशियन जर्नल ऑफ मार्डन एण्ड आयुर्वेदिक मेडिकल साइंस
वाराणसी, उ०प्र० (भारत)

मार्च-अप्रैल २०१४
वर्ष-८
अंक-२
www.anvikshikijournal.com

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

प्रधान सम्पादिका

डॉ. मनीषा शुक्ला,maneeshashukla76@rediffmail.com

पुनर्निरीक्षक संपादक

प्रो. विभा रानी दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ.प्र.,भारत

डॉ. नागेन्द्र नारायण मिश्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद,उ.प्र.,भारत

प्रो. उमेश चंद्र दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उ. प्र.,भारत

सम्पादक

डॉ. महेन्द्र शुक्ल, डॉ. अंशुमाला मिश्रा

सम्पादक मण्डल

डॉ. कंचन ढींगरा, डॉ. सपना भारती, डॉ. अतुल प्रताप सिंह, डॉ. पवन दूबे, डॉ. गौरी चौहान, डॉ. भावना गुप्ता, डॉ. राजेश, डॉ. रेनू कुमारी, डॉ. निशी रानी, डॉ. संगीता जैन, डॉ. आरती बंसल, डॉ. कला जोशी, डॉ. सुनीता त्रिपाठी, डॉ. रानी सिंह, डॉ. स्वीटी बंदोपाध्याय, डॉ. अर्चना शर्मा, डॉ. पिन्टू कुमार, मधुलिका सिन्हा, डॉ. मधुलिका, डॉ. नीलू कुमारी, आशा मीणा, तन्मय चटर्जी, अनीता वर्मा, अनन्द रघुवंशी, नंद किशोर, रेनू चौधरी, श्याम किशोर, विमलेश कुमार सिंह, अखिलेश रध्वज सिंह, दिनेश मीणा, गुंजन, विनीत सिंह, नीलमणि त्रिपाठी, अंजू बाला

अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार मण्डल

रेव डोडामगोडा सुमनासार (श्रीलंका), वेन केन्डागेले सुमनारांसी थेरो (श्रीलंका), रेव टी धम्मारतना (श्रीलंका), पी.त्रिराची सोडामा (श्रीलंका), फ्रा च्युतिदेश सैन्सोम्बट (बैंकाक,थाईलैंड), फ्रा बूनसर्मस्त्रिथा (थाईलैंड), डॉ. सीताराम बहादुर थापा (नेपाल), मोहम्मद सौरजाई (जाबोल, ईरान), माजिद करीमजादेह (ईराक), डॉ. अहमद रेजा केईखाय फरजानेह (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद जारेई (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद मोजटाबा केयाहफरजानेह (जाहेडान, ईरान), डॉ. होसैन जेनाबदी (सिस्तान एवं बलूचिस्तान, ईरान), मोहम्मद जावेद केयाह फरजानेह (जाबोल, ईरान)

प्रबन्धक

महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

सारांश एवं सूचीपत्र

मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र दिल्ली, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका सूचीपत्र वाराणसी, सेन्ट्रल न्यूज एजेंसी सूचीपत्र दिल्ली, डी.के.पब्लिकेशन सूचीपत्र दिल्ली, नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस कम्यूनिकेशन एण्ड इन्फारमेशन रिसोर्स सूचीपत्र दिल्ली, नोएडा कॉलेज ऑफ फिज़िकल एजुकेशन सूचीपत्र गौतमबुद्ध नगर

पाठकों से

आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका प्रत्येक दो माह (जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितम्बर एवं नवम्बर) पर एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण वाराणसी उ.प्र. भारत द्वारा प्रकाशित की जाती है। एक वर्ष में आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका 6 भाग हिन्दी एवं 6 भाग अंग्रेजी एवं 3 अतिरिक्तांकों के भाग में प्रकाशित की जाती है। डॉक खर्च दर के सम्बन्ध में जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

वार्षिक पाठक मूल्य दर

संस्थागत एवं व्यक्तिगत : भारतीय 5000+1000/-डाक शुल्क, एक प्रति 1200+100/- डाक शुल्क, वैदेशिक : 6000+डॉक खर्च, एक प्रति 1000+डाक शुल्क

विज्ञापन एवं निवेदन

विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रधान सम्पादिका के पते पर संपर्क करें। आन्वीक्षिकी एक स्ववित्तपोषित पत्रिका है,अत: किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा। कृपया अपनी सहयोग राशि चेक अथवा ड्राफ्ट के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें।

सभी पत्राचार निम्नलिखित पते पर ही प्रेषित करें-

बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया,लंका वाराणसी उ.प्र. भारत,पिन कोड 221005 मोबाइल नं. 09935784387,

टेलीफोन नं. 0542-2310539.,E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com,www.anvikshikijournal.com

मिलने का समय : 3-5 दिन में(रविवार अवकाश)

पत्रिका संयोजन : महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

प्रकाशन :एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण

प्रकाशन तिथि : 1 मार्च 2014

मनीषा प्रकाशन

(पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/ 2007-2008 बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया, लंका वाराणसी उ.प्र. भारत)

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

वर्ष-8 अंक-2 मार्च-2014

शोध प्रपत्र

सृष्टि-प्रपञ्च-विमर्श- डॉ. जयमंगल पाण्डेय 1-4
शिक्षा एवं कर्म के निर्धारण का आधार : प्राचीन वर्ण व्यवस्था- विमलेश कुमार सिंह 5-7

हिन्दी कथा-साहित्य में व्यंग्य का स्वरुप एवं विकास- डॉ. मधुलिका 8-10
प्राथमिक शिक्षा एवं सर्व शिक्षा अभियान- विमलेश कुमार सिंह 11-15

अम्बेडकर बनाम गांधी : आलोचना, विरासत और आध्यात्म- अखिलेश रध्वज सिंह 16-20
ममता कालिया की दृष्टि में समकालीन स्त्री के साथ सलूक युग बोध- डॉ. मधुलिका एवं मोनिका देवी 21-23

गांधी जी शिक्षा के माध्यम से महिलाओं की मुक्ति में विश्वास रखते थे- अखिलेश रध्वज सिंह 24-28
कृष्णा सोवती के औपन्यासिक चिंतन पर एक दृष्टि- डॉ. प्रभा दीक्षित 29-33

इक्कीसवीं सदी के महत्वपूर्ण बिन्दुओं से रू-ब-रू करवाती किरण अग्रवाल- डॉ. राधा वर्मा 39-46

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में राम की अवधारणा- डॉ. नीतू कुमारी 47-52
जैन और बौद्ध धर्म के उद्भव की भौतिक पृष्ठभूमि- मधुलिका सिन्हा 53-56

मिस्र के विकास में मेहमत अली (मोहम्मद अली) का योगदान- डॉ. अशोक कुमार 57-59
मौलिक सिद्धान्तों की पंचकर्म में उपादेयता- दिनेश कुमार मीना एवं रानी सिंह 60-63

रेहन पर रग्घू में परिवर्तित पारिवारिक सम्बन्ध- अंजू बाला 64-74
इतिहास में शूद्र का विवेचन : एक संक्षिप्त पृष्ठभूमि- हरिशंकर राय 75-79

गरीबी की सापेक्षता : एक विश्लेषण- डॉ. विभा त्रिपाठी 80-83
कृष्णा सोबती द्वारा रचित संस्मरण 'हम हशमत' के तीनों भागों की भाषा शैली- अंजू बाला 89-97

महायान बौद्धधर्म में 'पारमिता' की अवधारणा- डॉ. अर्चना शर्मा 98-103

प्रिंट ISSN 0973-9777, वेबसाइट ISSN 0973-9777

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,1-4**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 01 दिसम्बर 2013

सृष्टि-प्रपञ्च-विमर्श

डॉ. जयमंगल पाण्डेय*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *सृष्टि-प्रपञ्च-विमर्श* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *जयमंगल पाण्डेय* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

भारतीय अध्यात्मशास्त्र की दृष्टि में समग्र सृष्टि तत्त्वद्वय मूलक है- 1. 'सत्', 2. 'असत्'। 'सत्' का अर्थ है- 'विद्यते वर्तते वा' अर्थात् 'सृष्टि' का वह तत्त्व जो 'सार्वकालिक', 'सार्वदेशिक' व *'पारिमार्थिक'* है, वही 'सत्' है। उसी को भारतीय आस्तिक दर्शन 'ब्रह्म', 'आत्मा', 'परमात्मा', 'जीव' एवं 'पुरूष' कहते हैं। उसे 'पुरूष' इसलिए कहते हैं; क्योंकि वह तत्त्व प्राणियों के शरीर रूपी 'पुरी', 'नगरी' में शयन करता है।

वेदान्त दर्शन की दृष्टि में यह तत्त्व 'सत्-चित्-आनन्द' स्वरूप वाला है। यह 'नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम्' है।[1] 'आकाश-वत्सर्वगतश्च नित्यः' है। 'अजो नित्यः शाश्वतः'[2]; 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म';[3] 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म';[4] 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्';[5] 'आनन्दरूपमृतं यद् विभाति'[6] इत्यादि है।

ध्येय है कि 'ब्रह्म' और 'आनन्द' में 'गुण-गुणी' या 'धर्म-धर्मि' भाव सम्बन्ध नहीं है; अपितु ज्ञानवत् 'आनन्द' भी 'ब्रह्म' का स्वरूप ही है। 'जीव' में जो शुद्ध चैतन्य प्रकाशित हो रहा है, वही ब्रह्म रूप से इस वाह्य जगत् में भी व्याप्त है। यह तत्त्व शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार आदि से बिल्कुल पृथक् है। वह शुद्ध चैतन्यरूप व अनुभव का अधिष्ठान है। वह स्वतः सिद्ध है। उसका निराकरण असम्भव है; क्योंकि जो निराकर्त्ता है, वही उसका स्वरूप है।

सृष्टि का यह प्रथम तत्त्व-आत्मा, मन और वाणी का विषय नहीं बनता; क्योंकि वह इन सबका भी साक्षी है और उसी के प्रकाश से समग्र जगत् प्रपंच प्रकाशित होता है। 'नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा'[7]; 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'[8]; एवं 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'[9] इत्यादि वचनों से स्पष्ट है कि पूर्व विहित उस सत् तत्त्व के प्रकाश से समग्र सृष्टि प्रकाशित है। वह चिद्रूप है; क्योंकि उसी के चैतन्य से सृष्टि में चेतनता का संचार हो रहा है। उसकी अविद्यमानता में सब कुछ जड़ात्मक हो जाता है। सृष्टि को ही 'जगत्' या 'संसार' भी कहते हैं; क्योंकि यह 'ज' त्र 'उत्पन्न होती है' और 'गत्' त्र 'नष्ट', 'विलीन' हो जाती है। इसमें प्रतिक्षण संसरणशीलता बनी हुई है, जो कि अत्यन्त सूक्ष्म होने से चक्षु का विषय नहीं बनती। यतः प्राणियों का भी शरीर 'ज' त्र 'उत्पन्न होता है' और 'गत्' 'नष्ट

* प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, बी. एन. के. बी. पी. जी. कॉलेज [अकबरपुर] अम्बेडकरनगर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

हो जाता है', अतः जगत् है और इसी 'जगत्' रूप जीवों के शरीर में 'आत्मा' निवास करता है। शरीरों में आबद्ध होने की स्थिति में यही 'आत्मा' 'जीव' संज्ञक है। शरीर के बन्धन से मुक्त हुआ यही 'जीव' अपने पूर्ववर्ती विस्तार को पाकर- 'अयमात्मा ब्रह्म'[10]; 'जीवो ब्रह्मैव नापरः'[11]; 'सोऽहम्'; 'तत्त्वमसि'[12]; एवं 'अहं ब्रह्मास्मि'[13] का अनुभव करता है।

सृष्टि के जिस 'सत्' तत्त्व को वेदान्त 'ब्रह्म' 'आत्मा' ईश्वरादि कहता है, सांख्य दर्शन उसी 'तत्त्व' को 'पुरूष' कहता है। 'सांख्य' का यह तत्त्व शुद्ध, बुद्ध, नित्य, मुक्त एवं चैतन्य स्वरूप है। 'चैतन्य', पुरूष का गुण नहीं, स्वभाव है। यह तत्त्व निष्क्रिय, उदासीन एवं प्रकाशमान है। 'अनाश्रित', 'अलिंग', 'स्वतन्त्र', 'निरवयव', 'अत्रिगुण', 'विवेकी', 'अविषय', 'असामान्य', 'चेतन', 'अप्रसवधर्मी', 'साक्षी', 'कैवल्य', 'मध्यस्थ', 'उदासीन', 'द्रष्टा' आदि विशेषताओं से सम्पृक्त है।[14]

सृष्टि प्रपंच में कारणभूत दूसरा तत्त्व है- 'असत्'। इसी को वेदान्त दर्शन 'माया' तथा सांख्य दर्शन 'प्रकृति' कहता है। ये दोनों ही तत्त्व स्वभावतः 'त्रिगुणात्मक', 'जड़ात्मक' अतएव 'विनश्वरधर्मी' हैं। इन्हीं से सृष्टि अस्तित्त्व में आती है, और इन्हीं में विलीन भी हो जाती है। वेदान्त की 'माया' 'ब्रह्म' की शक्ति है। दोनों में 'शक्ति' एवं 'शक्तिमान्' भाव सम्बन्ध है। माया, न 'सत्' है, न 'असत्' है, न सदसद् ही है।

यह 'अनिर्वचनीय' 'अनाख्येय' और 'मिथ्यारूप' होती हुई भी सनातनी व शाश्वत है। ठीक ऐसी ही सांख्य की प्रकृति भी है। 'न सद्रूपा नासद्रूपा माया नैवोभयात्मिका.....।' एवं 'अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिकापरा। कार्यानुमेया सुधियैव माया, यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते।।'[15] अर्थात् जो अव्यक्त नाम वाली त्रिगुणात्मिका अनादि अविद्या परमेश्वर की परा शक्ति है, वही माया है; जिससे यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है। बुद्धिमान् जन इसके कार्य से ही इसका अनुमान करते हैं। यह माया- 'सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो.....महद्भुतानिर्वचनीयरूपा' है।[16]

'माया' और 'अविद्या' में सूक्ष्म अन्तर है। सत्त्व, रजस् एवं तमस्- इन तीनों गुणों की साम्यावस्था प्रकृति है। इसके दो भेद हैं- 'माया' और 'अविद्या'। 'रजस्' और 'तमस्' की मलिनता से रहित शुद्ध सत्त्वप्रधान प्रकृति के 'अविद्या' कहते हैं। 'माया' से आच्छन्न 'ब्रह्म' को 'ईश्वर' तथा 'अविद्या' से आच्छन्न ब्रह्म को जीव कहते हैं- 'चिदानन्दमय..... मायाविम्बो वशीकृत्य तां स्यात् सर्वज्ञ ईश्वरः'[17] ज्ञान प्राप्त हो जाने पर अविद्या का नाश हो जाता है; परन्तु माया ब्रह्मवत् अनादि है। माया, ईश्वर की शक्ति और जगत् का कारण है। प्रलय के बाद भी माया बीजरूप में ईश्वर में विद्यमान रहती है।

आचार्य शंकर ने माया से उपहित ब्रह्म से पाँच सूक्ष्म भूतों की उत्पत्ति स्वीकार की है तथा पंच सूक्ष्म भूतों से पंच स्थूल भूतों की उत्पत्ति अग्रांकित रूप से मानी है :

1. स्थूल आकाश = 1/2 आकाश+1/8 वायु+1/8 अग्नि+1/8 जल+1/8 पृथ्वी
2. स्थूल वायु = 1/2 वायु+1/8 आकाश+1/8 अग्नि+1/8 जल+1/8 पृथ्वी
3. स्थूल अग्नि = 1/2 अग्नि+1/8 आकाश+1/8 वायु+1/8 जल+1/8 पृथ्वी
4. स्थूल जल = 1/2 जल+1/8 आकाश+1/8वायु+1/8 अग्नि+1/8 पृथ्वी
5. स्थूल पृथ्वी = 1/2 पृथ्वी+1/8 आकाश+1/8 वायु+1/8 अग्नि+1/8 जल

इस क्रिया को पंचीकरण प्रक्रिया कहते हैं और विहित रीति से[18] सूक्ष्मभूत् पंचीकृत होकर स्थूल महाभूत हो जाते हैं एवं इन्हीं से सृष्टि अस्तित्त्व में आती है। प्रलय का क्रम सृष्टि क्रम के बिल्कुल प्रतिकूल है। प्रलय काल में पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में तथा आकाश माया में लीन हो जाता है।[19]

ध्येय है कि उपर्युक्त पंच महाभूतों के सात्त्विक अंशों से प्राणियों में क्रमशः कर्ण, त्वक्, चक्षु, जिह्वा एवं घ्राणेन्द्रिय की उत्पत्ति होती है। सांख्य दर्शनानुसार पुरूष एवं मूल प्रकृति के संयोग से सृष्टि क्रम में महत्तत्त्व, अहंकार, 11 इन्द्रियाँ, पंचतन्मात्राएँ एवं पंचभूत व्यक्त होते हैं। जिन्हें इस प्रकार देखा जा सकता है-

इस प्रकार सांख्यानुसार सृष्टि-प्रक्रिया में कुल 25 तत्त्व मान्य हैं और इन्हीं से सृष्टि अस्तित्त्व में आती है।[20] समग्र जड़-चेतन सृष्टि में विहित तत्त्वों का योग है। समस्त प्राणियों के शरीर में इन्हीं तत्त्वों की चारू संघटना है। 'पुरूष' को छोड़कर सभी तत्त्व, त्रिगुणात्मक, जड़ात्मक एवं विनश्वरधर्मी हैं। वेदान्त दर्शन, जीव के तीन शरीर- 1. कारण, 2. सूक्ष्म एवं 3. स्थूल मानता है। कारण शरीर, अज्ञान-निर्मित है; सूक्ष्म शरीर 17 तत्त्वों से निर्मित है तथा स्थूल शरीर 5 महाभूतों से

निर्मित है। सांख्य दर्शन तो सूक्ष्म एवं स्थूल, मात्र दो ही शरीरों को स्वीकार करता है तथा सूक्ष्म (लिंग) शरीर को महत् तत्त्व,

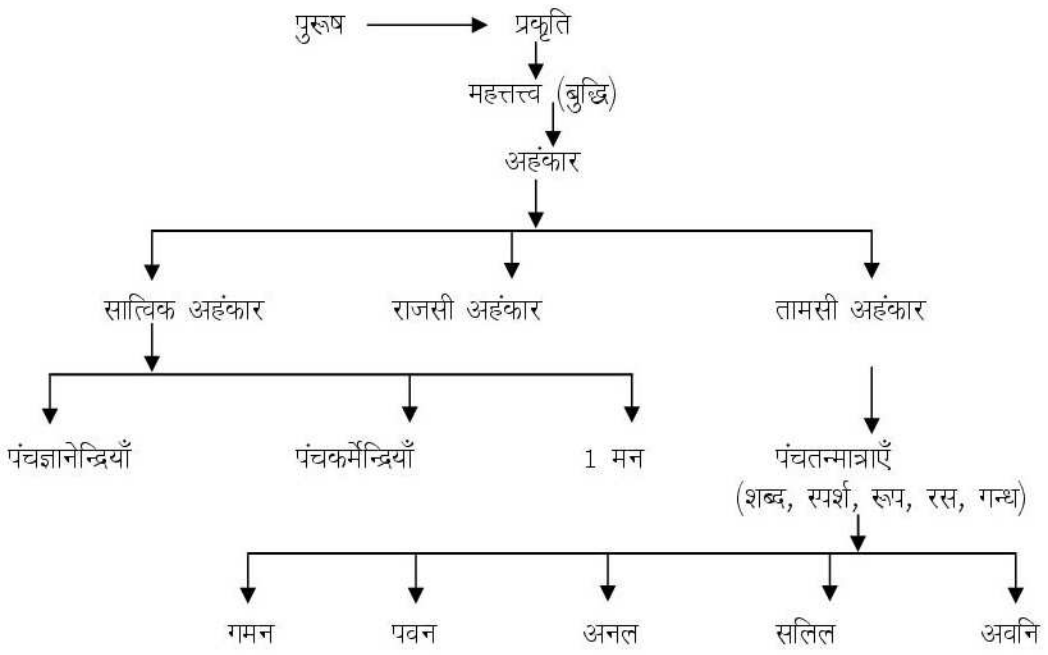

25 तत्त्व

अहंकार, पंचज्ञानेन्द्रियाँ, पंचकर्मेन्द्रियाँ 1 मन तथा पंचतन्मात्राओं (18 तत्त्वों) से निर्मित मानता है। प्राणियों का सूक्ष्म शरीर सृष्टिकाल से प्रलय काल तक बना रहता है और प्रलय काल में अपने मूल कारण प्रकृति में विलीन हो जाता है।[21]

प्राणियों के सूक्ष्म शरीर की सर्वत्रगति होती है। यह गगन, पवन, अनल, सलिल, अवनि तथा भीषण पाषाण-खण्डों को भी भेद सकता है। इसका आश्रय, माता-पिता के रज एवं वीर्य से उत्पन्न स्थूल शरीर होता है। स्थूल शरीर के माध्यम से ही सूक्ष्म शरीर सारे भोगों को भोगता है। यह सूक्ष्म शरीर, स्थूल शरीरों के छूटने पर नये स्थूल शरीरों को धारण करता रहता है। ध्येय है कि सूक्ष्म शरीरों के आश्रय में रहता हुआ जीव नाना योनियों में, कर्मानुसार भ्रमण करता रहता है।

स्थूल शरीर माता-पिता के रज एवं वीर्य के सम्मिश्रण से उत्पन्न होता है, जैसा कि हम पूर्व में कह चुके हैं। त्वचा, रक्त एवं मांस- ये तीनों माता के रज द्वारा उत्पन्न होते हैं तथा स्नायु, हड्डी और मज्जा ये तीनों पिता के वीर्य द्वारा निर्मित होते हैं। यह शरीर स्थूल होने से चक्षु का विषय बनता है तथा यही शरीर जीव को नाना योनियों में मिलता और छूटता रहता है।[22]

अवधेय है कि प्रत्येक जन्म में, जीव-कृत कर्मों के शुभाशुभ संस्कार, सूक्ष्मशरीर के मुख्य घटक 'मन' में संचित होते रहते हैं तथा जीव कर्मानुसार नाना योनियों में, नाना शरीरों को धारण करता हुआ, पूर्वजन्म-कृत-कर्म-फलों को भोगता रहता है, 'अवश्यमेव भोक्तव्यं,/कृतं कर्मशुभाशुभम्।'[23]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1] मुण्डकोपनिषद् 1/1/6
[2] कठोपनिषद् 1/2/18
[3] तैत्तिरीयोपनिषद् 2/1
[4] वृहदारण्यकोपनिषद् 3/9/28
[5] तैत्तिरीयोपनिषद् 3/6/1

[6] मुण्डकोपनिषद् 2/2/7
[7] कठोपनिषद् 2/3/12
[8] तैत्तिरीयोपनिषद् 2/4/1
[9] कठोपनिषद् 2/2/15
[10] माण्डूक्योपनिषद् 2/
[11] शांकर अद्वैत वे.सि. वेदान्तसार, पृष्ठ संख्या 16
[12] छान्दोग्योपनिषद् 6/8/7
[13] वृहदारण्यकोपनिषद् 1/4/10
[14] सांख्यकारिका, पृष्ठ संख्या 41/
[15] विवेकचूड़ामणि श्लोक 110, पृष्ठ संख्या 32
[16] वही, श्लोक 111, पृष्ठ संख्या 32
[17] पंचदशी 1/15, 16
[18] भारतीय दर्शन की रूपरेखा -प्रो. हरेन्द्र सिन्हा, पृष्ठ संख्या 319
[19] वही, पृष्ठ संख्या 319
[20] ईश्वर कृष्ण प्रणीत सांख्यकारिका, कारिका सं. 22
[21] वही, पृष्ठ संख्या 124
[22] वही, पृष्ठ संख्या 115-116
[23] नारदपुराण, प्रथम खण्ड के 31 वें अध्याय का 70 वाँ श्लोक

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,5-7**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 16 नवम्बर 2013

शिक्षा एवं कर्म के निर्धारण का आधार : प्राचीन वर्ण व्यवस्था

विमलेश कुमार सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *शिक्षा एवं कर्म के निर्धारण का आधार : प्राचीन वर्ण व्यवस्था* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *विमलेश कुमार सिंह* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

हिन्दू धर्म में प्राचीन काल से चले आ रहे सामाजिक गठन का अंग है, जिसमें विभिन्न समुदायों के लोगों का काम निर्धारित होता था। इन लोगों की संतानों के कार्य भी इन्हीं पर निर्भर करते थे तथा विभिन्न प्रकार के कार्यों के अनुसार बने ऐसे समुदायों को जाति या वर्ण कहा जाता था। प्राचीन भारतीय समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्णों में विभाजित था। ब्राह्मणों का कार्य शास्त्र अध्ययन, वेदपाठ तथा यज्ञ कराना होता था जबकि क्षत्रिय युद्ध तथा राज्य के कार्यों के उत्तरदायी थे। वैश्यों का काम व्यापार तथा शूद्रों का काम सेवा प्रदान करना होता था। प्राचीन काल में यह सब संतुलित था तथा सामाजिक संगठन की दक्षता बढ़ाने के काम आता था। पर कालान्तर में ऊँच-नीच के बीच अलग सा रिश्ता बनता जा रहा है। कहा जाता है कि हिटलर भारतीय वर्ण व्यवस्था से बहुत प्रभावित हुआ था। भारतीय उपमहाद्वीप के कई अन्य धर्म तथा सम्प्रदाय भी इसका पालन आंशिक या पूर्ण रूप से करते हैं। इसमें सिक्ख, इस्लाम तथा ईसाई धर्म का नाम उल्लेखनीय है।[1]

चार वर्ण : वास्तव में चार वर्ण मनुष्य जाति का मूलभूत स्वभाव है, ज्योतिष में भी इसके लक्षण मिलते हैं और श्रीमद्भागवत गीता में भी। वे इस प्रकार है- 1. युद्धलोलुप- लड़ने को अक्सर अमादा- क्षत्रिय 2. व्यानलोलुप- विद्यायें सीखने को इच्छुक - किताबी कीड़ा ब्राह्मण, 3. धनलोलुप- अत्यंत लोभी, ठग, - हमेशा 99 को 100 करने के चक्कर में - बनिया या वैश्य, 4. बेपरवाह, मस्तमौला जीव- कल की फिक्र नहीं, मेहतन करो और खाओपियो मौजकरो- शूद्र। दुर्भाग्य से इन स्वभावों को कुटिल लोगों ने जाति में बदल कर अपने को श्रेष्ठ घोषित कर दिया, यानि ब्राह्मण, और लोगों को धर्म, भगवान के नाम पर ठग-ठग पर उनकी कमाई पर ऐश करने लगे। यहीं से धर्म में विकृति आने लगी, क्योंकि धर्म शास्त्र की मनमानी व्याख्या अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये इन्होंने की। ब्रह्मभोज को ब्राह्मणभोज में बदल दिया।[2]

क्षत्रिय : क्षत्रियों का काम राज्य के शासन तथा सुरक्षा का था। क्षत्रिय युद्ध में लड़ते थे। क्षत्रिय लोग बल, बुद्धि और विद्या तीनों में पारंगत होते हैं। भारत की क्षत्रिय के अलावा तीन प्रमुख जातियां है :

* प्रवक्ता [गणित], सर्वोदय किसान इण्टर कॉलेज [कौड़ीराम] गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

ब्राह्मण : शिक्षा देना, यज्ञ करना-कराना, वेद पाठ, मन्त्रोच्चारण, क्रियाकर्म तथा विविध संस्कार कराना जैसे कार्य ब्राह्मणों द्वारा निष्पादित किये जाते थे। मन्दिरों की देखभाल तथा देवताओं की उपासना करने तथा करवाने का दायित्व भी उन्हीं के पास है। मंदिर में वेदों के ज्ञान के अतिरिक्त नृत्य तथा संतात का भी प्रचलन था। भारत के विभिन्न भागों में विभिन्न उपनामों से जाने जाते हैं। द्विवेदी, दूबे, त्रिवेदी, चतुर्वेदी, पाण्डेय, शर्मा तथा झा जैसे नाम क्षेत्र के अनुसार बदलते हैं।

वैश्य : ये वर्ग जिसे व्यापार का काम सौपा गया था वो इस जाति में आते हैं। उनके नामों के आगे अग्रवाल, गुप्ता, जैसवाल, खंडेलवाल, पोद्दार आदि लगा होता है।

शूद्र : ये विभिन्न कार्यों को करने के लिये जिम्मेवार थे जैसे कृषि, पशुपालन (यादव), माली, लौहकार, बढ़ई (लकड़ी का काम), डोम (नाले की सफाई करने वाले), नाई, धोबी, तेली, कहार, धीमार, कटिक इत्यादि।

उत्पत्ति

वर्णों की उत्पत्ति के दो मान्य सिद्धान्त हैं।

धर्म के अनुसार सृष्टि बनने के समय मानवों को उत्पन्न करते समय ब्रह्मा जी के विभिन्न अंगो से उत्पन्न होने के कारण कई वर्ण बन गये। 1. मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए। 2. भुजाओं से क्षत्रिय उत्पन्न हुए। 3. जाघ से वैश्य उत्पन्न हुए। 4. पैर से शूद्र उत्पन्न हुए।

उपरोक्त कल्पित विचार का खंडन भगवान बुद्ध ने अपने जीवन काल में ही कर दिया था। दीघ निकाय के आगण सुत्त के अनुसार पृथ्वी की उत्पत्ति के बाद जब जीवों को क्रमिक विकास हुआ और उनमें तृष्णा लोभी अभिमान जैसे भावों का जन्म हुआ तो उन प्रारंभिक सत्वों में विभिन्न प्रकार की विकृतियाँ और आयु में क्रमशः कमी होने लगी। इसके बाद वे लोग चोरी जैसे कर्मों में प्रवृत्त होने लगे और पकड़े जाने पर क्षमा याचना पर छोड़ दिए जाने लगे किन्तु लगातार चोर कर्म करने के कारण सभी जनसमुदाय परेशान होकर एक सम्माननीय व्यक्ति के पास गए और बोले तुम यहाँ अनुशासन की स्थापना करो उचित और अनुचित का निर्णय करो हम तुम्हें अपना अन्न में से हिस्सा देंगे उस व्यक्ति ने यह मान लिया। चूँकि वह सर्वजन द्वारा सम्मत था इसलिए महा सम्मत नाम से प्रसिद्ध, लोगों के क्षेत्रो (खेतों) का रक्षक था इसलिए क्षत्रिय हुआ और जनता का रंजन करने के कारण राजा कहलाया। उन सर्वप्रथम व्यक्ति को आज मनु कहा जाता है जिसके आचार विचार पर चलने वाले मनुष्य कहलाये। इस प्रकार क्षत्रिय वर्ण की उत्पत्ति व्यक्ति को आज मनु कहा जाता है जिसके आचार विचार पर चलने वाले मनुष्य कहलाये। इस प्रकार क्षत्रिय वर्ण की उत्पत्ति प्रजातान्त्रिक तरीके से जनता द्वारा राजा चुनने के कारण हुई। यह वर्ण का निर्णय धर्म (नीति) के आधार पर हुआ न कि किसी दैवीय सत्ता के कारण। इसी प्रकार ब्राह्मण वैश्य और शूद्र वर्ग की उत्पत्ति भी अपने उस समय के कर्मों के अनुसार हुई।[3] शूद्रों के बारे में लिखित जानकारी सर्वप्रथम ऋग्वेद के दसवें मंडल के 90 वें मंत्र पुरुष सूक्त में मिलती है इसमें कहा गया है कि पुरुष के विभाजन करने के पश्चात् उसके शरीर के भाग क्या-क्या थे और उत्तर दिया जाता है कि उसका मुख ब्राह्मण, बाहू क्षत्रिय, पैर वैश्य, और शूद्र थे।[4] जबकि इसी तैत्तरीय ब्राह्मण (1267) में लिखा है कि ब्राह्मण की उत्पत्ति देवताओं से हुई और शूद्रों की उत्पत्ति असुरों से हुई है।[5] इन उदाहरणों में चतुर्वर्ण और शूद्र वर्ण की उत्पत्ति के संबंध में दिए गए सभी व्याख्यान भिन्न-भिन्न है। चतुर्वर्ण की उत्पत्ति कोई पुरुष से कोई ब्रह्माजी से कोई प्रजापति से, कोई आसुरों से तो कोई शून्य से बताता है। इस प्रकार ये व्याख्याएँ ही काल्पनिक, मानव सृजित और उपद्रवी भावनाओं वाली हैं। इनका कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं है क्योंकि ये स्वयं ही परस्पर एक दूसरे को काट रही हैं।[6]

इतिहासकारों के अनुसार उत्पत्ति

भारतवर्ष में प्राचीन हिन्दू वर्ण व्यवस्था में लोगों को उनके द्वारा किये जाने वाले कार्य के अनुसार अलग-अलग वर्णों में रखा गया था।

- पूजा-पाठ व अध्ययन-अध्यापन आदि कार्यों को कारने वाले ब्राह्मण
- शासन-व्यवस्था तथा युद्ध कार्यों में संलग्न वर्ग क्षत्रिय
- व्यापार आदि कार्यों को करने वाले वैश्य
- श्रम कार्य व अन्य वर्गों के लिए सेवा करने वाले 'शूद्र' कहे जाते थे। यह ध्यान रखने योग्य है कि वैदिक काल की प्राचीन व्यवस्था में जाति वंशानुगत नहीं होता था लेकिन गुप्तकाल में आते-आते आनुवांशिक आधार पर लोगों के वर्ण तय होने लगे। परस्पर श्रेष्ठता के भाव के चलते नई-नई जातियाँ की रचना होने लगी। यहाँ तक कि श्रे-ठ समझे जाने वाले ब्राह्मणों ने भी अपने अंदर दर्जनों वर्गीकरण कर डाला। अन्य वर्ण के लोगों ने इसका अनुसरण किया और जातियों की संख्या हजारों में पहुँच गयी।

वैदिक काल में वर्ण-व्यवस्था जन्म-आधारित न होकर कर्म आधारित थी।

आरक्षण और वर्तमान स्थिति

उन्नीसवीं तथा बीसवी सदी में भी जाति व्यवस्था कायम है नीच जाति वालों को आरक्षण के नाम पर उनकी नीचता उन्हें याद दिलाई जा रही है। आरक्षण जहाँ पिछड़ी जातियों को अवसर दे रहा है वही वे उन्हें ये अहसास भी याद करवाता है कि वे उपेक्षित हैं। महात्मा गांधी, भीमराव अम्बेडकर जैसे लोगों ने भारतीय वर्ण व्यवस्था की कुरीतियों को समाप्त करने की कोशिश की। कई लोगों ने जाति प्रथा को समाप्त करने की बात की। पिछली कई सदियों से ''उच्च जाति'' कहे जाने वाले लोगों की श्रेष्ठता का आधार उनके कर्म का मानक होने लगा। ब्राह्मण बिना कुछ किये भी लोगों से उपर नहीं समझे जान लगे। भारतीय संविधान में जाति के आधार पर अवसर में भेदभाव करने पर रोक लगा दी गई। पिछली कई सदियों से पिछड़ी रही कई जातियों के उत्थान के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई। यह कहा गया है कि 10 सालों में धीरे-धीरे आरक्षण हटा लिया जाएगा, पर राजनैतिक तथा कार्यपालिक कारणों से ऐसा नहीं हो पाया।

धीरे-धीरे पिछड़े वर्गों की स्थिति में सुधार आया तथा तथाकथित उच्च वर्ग के लोगों को लगने लगा कि दलितों के आरक्षण के कारण उनके अवसर कम हो रहे हैं। इस समय तक जातिवाद भारतीय राजनीति का सामाजिक जीवन से जुड़ गया। अब भी कई राजनैतिक दल तथा नेता जातिवाद के कारण चुनाव जीतते हैं। आज आरक्षण को बढ़ाने की कवायद तथा उसका विरोध जारी है।

क्षेत्रीय विविधता

दलितों को लेकर विभिन्न लोगों में मतभेद हैं। कुछ जातियाँ किसी एक राज्य में पिछड़े वर्ग की श्रेणी में आती हैं तो दूसरे में नहीं इसके कारण आरक्षण जैसे विषयों पर बहुत अन्यमनस्कता की स्थिति बनी हुई है। कई लोग दलितों की परिभाषा को जाति के आधार पर न बनाकर आर्थिक स्थिति के आधार पर बनाने के पक्ष में हैं।

संदर्भ स्रोत

[1] हिन्दू वर्ण व्यवस्था, मुक्त ज्ञानकोश (Wikipedia.org)
[2] वही
[3] http://www.dli.gov.in
[4] http:://www.dli.ernet.in
[5] http://www.dli.ernet.in
[6] http://www.dli.ernet.in

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,8-10**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 05 दिसम्बर 2013

हिन्दी कथा-साहित्य में व्यंग्य का स्वरुप एवं विकास

डॉ. मधुलिका*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *हिन्दी कथा-साहित्य में व्यंग्य का स्वरुप एवं विकास* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मधुलिका* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

हिन्दी कथा-साहित्य में व्यंग्य, उस रूप और अर्थ में ऐसी कोई स्व-केन्द्रित स्वतन्त्र और नितान्त निजी अवयव सम्पन्न साहित्यिक विद्या नहीं है, जिस प्रकार कविता, उपन्यास, नाटक, निबन्ध इत्यादि विद्याएं पूर्णतः स्वायत विधाएं हैं व्यंग्य तो एक संचरणशील प्रवृत्ति है जो किसी भी साहित्यिक विद्या में यत्र-तत्र भी संचरित दिखाई पड़ सकती है और एक पूरी रचना की शिरा-शिरा कण-कण में भी।

व्यंग्य वास्तव में रचनाकार की अनुभूति अथवा विचार में भी अनुप्राणित रहता है। अनुभूति और विचार व्यंग्य रहित भी हो सकते हैं, परन्तु जहॉ कही उनमें व्यंग्य होगा, वह रचना में वहॉ-वहॉ अवश्यमेव दिखाई पड़ेगा। जहॉ रचनाकार की अनुभूमि आद्यन्त व्यंग्याश्रित होगी वहॉ उसकी पूरी रचना ही व्यंग्य-धर्मा बन जाती है। इस प्रकार कथा साहित्य में व्यंग्य का महत्व विधात्मक रूप में न होकर साहित्य की एक पृथक श्रेणी के रूप में ही निर्दिष्ट किया जा सकता है। स्थूलतः हम कह सकते हैं कि यदि साहित्य को आदर्श-और यथार्थ' के नाम पर विभाजित किया जा सकता है तो उसी प्रकार उसकी एक श्रेणी व्यंग्य-साहित्य भी हो सकती है।

साहित्य में व्यंग्य का स्वरूप एवं विकास

व्यंग्य क्या है ? इस प्रश्न को व्युत्पत्तिगत आधार पर, उसे प्रायः संस्कृत साहित्यशास्त्र में ध्वनि/ सम्प्रदाय द्वारा प्रणीत 'व्यञ्जना' से जोड़ा जाता है जो काव्यगत अर्थ को वाच्यार्थ से भिन्न स्तर पर ध्वनित अथवा व्यञ्जित करती है। इसी प्रकार के व्यन्जनाश्रित काव्य को उत्तम काव्य अथवा रस-ध्वनि युक्त काव्य माना गया है। व्यंजना अथवा व्यंग्य, रचनागत शब्दों में निहित अभिधेयार्थ से भिन्न उस अर्थ को उद्घाटित करता है जो कि रचनाकार का अभिप्रयार्थ है।

तात्पर्य यह है कि व्यंग्य, शब्द की वह शक्ति है जो शब्द के भीतर पर्तों में दिए अर्थ को मुखरित करती है। यह अर्थ, शब्द के सामान्य अर्थ से, शब्द कोष अर्थ से भिन्न होने के कारण प्रसंग की दृष्टि से विशिष्टार्थ का व्यञ्जक होता है। सामान्यतः

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, सी. आर. एम. जाट पी. जी. कॉलेज [हिसार] हरियाणा (पंजाब) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

आज हिन्दी में लिखे जा रहे व्यंग्य- साहित्य में प्रयुक्त व्यंग्य को ध्वनिवादियों के द्वारा प्रतिपादित व्यंजना (व्यंग्यार्थ) से ही जोड़ा जाता है।

व्यंग्य की उपर्युक्त व्युत्पति और अर्थ मान्य नहीं हो सकते, यद्यपि शब्द की व्यञ्जना-शक्ति के महत्व को नकारा नहीं जा सकता व्यञ्जना, व्यंग्यार्थ अर्थात् गूढ़ार्थ की व्यंजक है, परन्तु जिसे हम आज व्यंग्य साहित्य कहते हैं, उसके प्रत्येक शब्द के अर्थ-ध्वनन के लिए व्यंजना-शक्ति का आश्रय आवश्यक नहीं है। व्यंग्य-साहित्य के अन्तर्गत कहानी-रूप में, निबन्ध रूप में अथवा किसी भी अन्य विधा-रूप में लिखित रचना तो अभिधेय स्तर पर ही व्यंग्यार्थ को ध्वनित करती दिखाई पड़ती है। अर्थ कहीं भी बाधित होता दिखाई नहीं पड़ता। दूसरे इस आधुनिक व्यंग्य-साहित्य का अर्थगत मार्ग कुछ गुदगुदाने वाला, हंसाने वाला, ना-भौह सिकोड़ने के लिए प्रेरिक करने वाला होता है, आज की व्यंग्य रचनाओं में इस प्रकार ध्वनिवादियों द्वारा प्रणीत व्यंजनाश्रित अर्थवादी प्रसंग अथवा शब्द बहुत ही कम होते हैं इस प्रकार, आधुनिक व्यंग्य को व्यंजना-शक्ति पर निर्भर नहीं माना जा सकता, बल्कि वह तो रचनागत वसतुपक्ष के स्तर पर वैसे ही लेखन-सृजन की एक विशिष्ट मानसिकता है जिस प्रकार महाकाव्य, गीतकार, उपन्यास, नाटक, निबन्ध आदि विधाएं अपने-अपने वस्तु-पक्ष के गठन में अलग अलग मानसिकताएं कर्म करती है।

हिन्दी-साहित्य में, भारतेन्दु युग में अन्य गद्य-विधाओं के सूत्रपात के साथ व्यंग्य का भी सूत्रपात हुआ। मध्यकाल में व्यंग्य का माध्यम केवल कविता रही चूँकि तब गद्य का अभाव था जो कि मध्यकाल में किसी भी पूरी कृति को सृजन व्यंग्य धर्मी मानसिकता से नहीं हुआ। वह कृतियों में यत्र-तत्र टुकड़ों में ही उभर पाया, जैसे कबीर के काव्य में। आधुनिक युग में पूरी-पूरी कविताओं का स्वर भी व्यंग्यधर्मी रहा और अन्य विधाओं मे लिखित पूरी-पूरी रचनाओं का भी भारतेन्दु कृति 'भारत दुर्दशा' और 'अन्धेर नगरी' जैसी रचनाएँ व्यंग्य की दृष्टि से उत्तम कोटि की रचनाएं हैं। बालमुकुन्द गुप्त कृत 'शिवशम्भु का चिट्टा' व्यंग्य की दृष्टि से तत्कालीन सत्ता पर एक बहुत ही सशक्त चोट है।

अंग्रेजी साहित्य में अठारहवीं शताब्दी को यदि व्यंग्य साहित्य की शताब्दी कहा जाए तो गलत नहीं होगा। यही नहीं, वहाँ सोलहवीं शताब्दी में ही व्यंग्य को विद्यारूप में, ही अलग पहचान प्राप्त हो गई थी। इन रूपों में 'मॉक हिरोइक' 'पोयट्री' -बर्लस्क' 'कॉमेडी ऑफ ऐरर्ज' 'कॉमडी ऑफ मैनर्स', सैटायर, इन्वैक्टिव इत्यादि रूपों में व्यंग्य विधात्मक स्तर पर अपना स्वतन्त्र रूप स्थापित कर चुका था, जो पथ और गद्य दोनों में लिखा जा रहा था।

'वेबस्टर्स न्यू बर्ल्ड डिक्शनरी के अनुसार, "A literary work of special kid in which vice, follies, stupidities and abuses etc. are held up to ridicules and contempt." अर्थात् व्यंग्य एक विशिष्ट प्रकार की ऐसी साहित्यिक रचना है जिसमें बुराईयों, मूर्धताओं, विकृतियों तथा दुराचरण इत्यादि को उपहास और घृणास्पद रूप में प्रस्तुत किया जाता है। शॉर्टर ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी' के अनुसार, " The employment in speaking or writing of sareasm, irony, ridicule etc. in denouncing exposing or deriding vice folly, abuses or ills of any kind" अर्थात् दोषों, विकृतियों दुराचरण अथवा किसी भी प्रकार की बुराईयों की निन्दा अवमानना, उपहास इत्यादि के उद्घाटनार्थ लिखित अथवा मौखिक विडम्बना या ताना काशी का नाम व्यंग्य है।

हिन्दी में डॉ. पुष्पा बंसल ने व्यंग्य की परिभाषा इस प्रकार निर्धारित की है, ''व्यंग्य उस गद्य अथवा पद्यमी, लचीले शिल्पवाली शब्दिक अभिव्यक्ति को कहा जाता है जो किसी अनौचित्य, विसंगति अथवा पाखण्ड का स्थिति में सुधार लाने के उद्देश्य से व्यंजना के क्षरा उपहासात्मक ढंग से उद्घाटन अथवा उस पर प्रहार करती हुई तत्सम्बन्धी वास्तव चेतना को जागरित कर देती है।''

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि व्यंग्य स्थितियों, संदर्भो, व्यक्तियों और व्यवस्था इत्यादि के उन विभिन्न पक्षों पर रचित रचना का नाम है जो इन सबकी विद्रूपताओं को खोलते हुए इनकी विडम्बनाओं पर प्रहार करती है और पाठक को तरंगित करहे हुए इन सबके प्रति न केवल निन्दात्मक रूख अपनाने पर बाध्य करती है, बल्कि इन सब पर गहराई में सोचने पर बाध्य भी करती है। व्यंग्य में हास्य का तत्व हो भी सकता है और नहीं भी; लेकिन व्यंगकार का अपने विषय में गर्हित पक्ष से पूर्णयता परिचित होना आवश्यक है। व्यंग्य देखने में जितना हल्का प्रतीत

होता है, अपनी अर्थवत्ता में वह उतना ही गहन और सोद्देश्य होता है। इस सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई के समकालीन संदर्भ में व्यंग्य-लेखन पर ये विचार उदाहरणीय है ''आज सारी दुनिया में व्यंग्य साहित्य का मूल-स्वर है। बुर्जुवा समाजों में बेहद विसंगतियाँ हैं, परिवार से लेकर राष्ट्र के मंत्रिमण्डल तक भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण, मिथ्याचार पाखण्ड है। व्यंग्य इन सब में अन्वेषण और उद्घाटन का माध्यम है।''

के.पी. सक्सेना का भी है, ''आज का व्यंग्य आम आदमी की लड़ाई का एक पहलू है। आज हिन्दी-व्यंग्य में अद्भुत पैनापन, समुचित हास्य और कडुवाहट के तत्व हैं, जिसके कारण व्यंग्य-लेख निरन्तर लोकप्रिय होता जा रहा है।

'व्यंग्य' शब्द वि+अंग के योग से निष्पन्न होता है जिसमें 'वि' उपसर्ग का अर्थ है- 'विरूप करना'। इस प्रकार व्यंग का अर्थ हुआ- जहॉ किसी स्थिति, घटना या व्यक्ति को बेडौल रूप में इसलिए प्रस्तुत किया जाए ताकि उसके भीतर की कुत्सा को उभारा जा सके। अपने उद्देश्य में व्यंग्य (व्यंग्य) अन्य बड़ी कही जाने वाली साहित्यिक विधाओं से किसी भी तरह न्यूनतर नहीं है। महाकाव्य, उपन्यास, नाटक, कहानी इत्यादि में समाज, राष्ट्र व्यक्ति इत्यादि को किन्ही आदर्शों या संघर्षों में से गुजरते हुए दिखाया जाता है। व्यंग्य इसके विपरीत बिगड़े हुए व्यक्ति, समाज या राष्ट्र को दूसरे छोर से पकड़ता है और एक प्रकार से सबको सचेत करता है कि यदि ये विसंगतियॉ कुत्साएं और घृणित कार्यकलाप इसी प्रकार चलता रहे तो न केवल समाज और राष्ट्र की सता ही खतरे में पड़ जाएगी। इस प्रकार व्यंग्य के मूल में भी यथार्थ ही रहता है।

व्यंग्य, कोरा हास्य नहीं होता, जबकि व्यंग्य में हास्य में हास्य हो सकता है। कोरा हास्य गुदगुदाने वाला होता है जबकि व्यंग्य कचोटने वाला होता है। हास्य का उद्देश्य केवल वाहवाही लूटने तक होता है जबकि व्यंग्य का उद्देश्य सुधार होता है। व्यंग्य पूरी तरह साहित्यिक भी हो सकता है।

व्यंग्य का शिक्षा शिल्प निश्चित नहीं किया जा सकता क्योंकि उसके लिए कोई निश्चित विधा नहीं हो सकती। वह गद्य और पद्य दोनों में लिखा जा सकता है किसी भी रूप में लिखा जाए साहित्यिक रूप में व्यंग्य, यदि अन्य सभी विधाओं को एक तरफ रख दिया जाए तो अकेला ही दूसरी तरफ खड़ा होकर मुकाबला कर सकता है, कुल मिलाकर व्यंग्य जीवन के असत्यों की पर्ते छीलकर, सकी कुरूपता तो उद्घाटित करते हुए आनी परिणति में उसे सत्य के सामने अपराधी रूप में ला खड़ा करने का काम करता है।

संदर्भ

डॉ. बैजनाथ सिंहल -हिन्दी विधाऍ : स्वरूपतामक अध्ययन, हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ़, पृष्ठ संख्या 215
वही, पृष्ठ संख्या 216
वही, पृष्ठ संख्या 216
डॉ. बैजनाथ सिंहल -हिन्दी विधाऍ : स्वरूपतामक अध्ययन, हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ़, पृष्ठ संख्या 217
वही, पृष्ठ संख्या 218
वही, पृष्ठ संख्या 218
डॉ. बैजनाथ सिंहल -हिन्दी विधाऍ : स्वरूपतामक अध्ययन, हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ़, पृष्ठ संख्या 219
वही, पृष्ठ संख्या 219
डॉ. बैजनाथ सिंहल -हिन्दी विधाऍ : स्वरूपतामक अध्ययन, हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ़, पृष्ठ संख्या 220

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,11-15**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 16 नवम्बर 2013

प्राथमिक शिक्षा एवं सर्व शिक्षा अभियान

विमलेश कुमार सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *प्राथमिक शिक्षा एवं सर्व शिक्षा अभियान* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *विमलेश कुमार सिंह* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

शिक्षा हर एक भारतीय बालक बालिका की मूलभूत आवश्यकता है, शिक्षित बालक ही एक सभ्य सुसंस्कृत राष्ट्र की नींव रख सकता है। भारत में यद्यपि बहुत समय से इस बात का अनुभव किया जाता रहा था कि भारतीय नागरिकों में व्याप्त निरक्षरता को समाप्त किया जाना चाहिये, परन्तु स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् तो स्वतंत्रत नागरिकों को स्वतंत्रता की सुरक्षा और प्रगति के लिये तैयार करने के उद्देश्य से जनमत को सफल बनाने के प्रयास करने का आवश्यक प्रतीत हुये। जनमत की सफलता साक्षरता पर आधारित होती है। अतः साक्षरता के प्रसार के लिये प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्यता पर बल देना पड़ा। पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा के विकास में सराहनीय प्रयत्न किये गये। प्रथम योजना के प्रारम्भ में 42 प्रतिशत बालक-बालिकाओं के लिये प्राथमिक शिक्षा-सुविधायें प्राप्त थीं। प्रथम पंचवर्षीय योजना में 60 प्रतिशत तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजना में 100 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा-विकास लाने की योजना बनायी गयी। 6 वर्ष से 11 वर्ष की आयु के बालकों के लिये अनिवार्य शिक्षा-योजनायें लागू की गयीं और अनिवार्य शिक्षा को निःशुल्क देने का भी निर्णय किया गया। परन्तु चौथी योजना तक भी 100 प्रतिशत प्राथमिक निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था नहीं की जा सकी।

प्राथमिक शिक्षा ऐसा आधार है जिसपर देश तथा इसके प्रत्येक नागरिक का विकास निर्भर करता है। हाल के वर्षों में भारत ने प्राथमिक शिक्षा में नामांकन, छात्रों की संख्या बरकरार रखने, उनकी नियमित उपस्थिति दर और साक्षरता के प्रसार के संदर्भ में काफी प्रगति की है। जहाँ भारत की उन्नत शिक्षा पद्धति को भारत के आर्थिक विकास का मुख्य योगदानकर्ता तत्व माना जाता है, वहीं भारत में आधारभूत शिक्षा की गुणवत्ता काफी चिंता का विषय है।

बाल अधिकार

* प्रवक्ता [गणित], सर्वोदय किसान इण्टर कॉलेज [कौड़ीराम] गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

यह सत्य है कि भारत के तीन करोड़ बच्चों में से, बहुत-से बच्चे ऐसी आर्थिक एवं सामाजिक वातावरण में रहते हैं जो उनके शारीरिक एवं मानसिक विकास में बाधा पहुँचाते हैं। आज समय की जरूरत है कि हम भारत में इन बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये तैयार हो जायें ताकि उनके भविष्य को उज्ज्वल व सशक्त बनाया जा सके।

भारत में, स्वातंत्र्योत्तर युग ने संवैधानिक उपलब्धियों, नीतियों, कार्यक्रमों एवं विधान के माध्यम से बच्चों के प्रति सरकार के स्पष्ट रूख का अनुभव किया है। इस शताब्दी के अंतिम दशक में, स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षा एवं सम्बन्धित कार्यक्षेत्रों में आये तीव्र प्रौद्योगिकी विकास ने बच्चों को नये अवसर प्रदान किये हैं।

भारत में बच्चों से सम्बन्धित अन्य समस्याओं प प्राथमिकता से विचार करने के उद्देश्य से सरकारी, गैर-सरकारी संस्थायें एवं अन्य सभी एकजुट हो गये हैं। उनमें समाविष्ट सम्बन्धित मुद्दे हैं- बच्चे और काम, बालश्रम की समस्या से निपटना, लिंग भेद उन्मूलन, फुटपाथ पर रहने वाले बच्चों का उत्थान, विकलांग बच्चों की विशेष आवश्यकताओं को पूरा करना एवं हर बच्चे को उसके आधारभूत अधिकार के रुप में शिक्षा प्रदान करना।

मौलिक अधिकार के रुप में शिक्षा

भारत के प्रत्येक नागरिक को प्राथमिक शिक्षा पाने का अधिकार है। इस सम्बन्ध में ''प्रारम्भिक (प्राथमिक व मध्य स्तर) पर शिक्षा निःशुल्क हो, प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य हो तथा तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाया जाये एवं उच्च शिक्षा सभी की पहुँच के भीतर हो'' कुछ ऐसी बुनियादी सिद्धान्त हैं जो हमारा मार्गदर्शन कर रहे हैं।

शिक्षा का उपयोग मानव व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास, मानवीय अधिकारों और बुनियादी स्वतंत्रता के लिये किया जाना चाहिये। माता-पिता और अभिभावकों को यह पूर्वाधिकार हो कि वे अपने बच्चों को किस तरह की शिक्षा देना चाहते हैं।

संवैधानिक प्रावधान

भारत के संविधान में राज्य के नीति निदेशक के अनुच्छेद 21ए0, 24 एवं 29 में सड़क पर रहने वाले बच्चों के उत्थान की वचनवद्धता के उद्देश्य के लिये :

अनुच्छेद 21ए (शिक्षा का अधिकार) : राज्य 6 से 14 साल तक की आयु के बच्चों को राज्य, अधिनियम द्वारा निश्चित निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा।

अनुच्छेद 24 : (बच्चों को कारखानों आदि में रोजगार देने पर प्रतिबन्ध) चौदह साल से कम आयु के किसी भी बच्चे को किसी कारखाने या खान या अन्य किसी जोखिम भरे काम में नहीं लगाया जाना चाहिये।

अनुच्छे 29 (राज्य को, विशेष रूप से, ऐसी नीति बनानी चाहिये जो सुरक्षित कर सके) : कर्मचारियों का स्वास्थ्य एवं शक्ति, पुरूष व महिलायें और कम आयु के बच्चे शोषित न हों और आर्थिक आवश्यकतायें किसी भी नागरिक को उनकी आयु या शक्ति के प्रतिकूल स्थितियों में न भेजा जा सके।

सर्व शिक्षा अभियान

सभी व्यक्ति को अपने जीवन की बेहतरी का अधिकार है। लेकिन दुनियाभर के बहुत सारे बच्चे इस अवसर के अभाव में ही जी रहे हैं क्योंकि उन्हें प्राथमिक शिक्षा जैसी अनिवार्य मूलभूत अधिकार भी मुहैया नहीं कराई जा रही है।

भारत में बच्चों को साक्षर करने की दिशा में चलाये जा रहे कार्यक्रमों के परिणामस्वरुप वर्ष 2000 के अन्त तक भारत में 94 प्रतिशत ग्रामीण बच्चों को उनके आवास से एक किमी की दूरी पर प्राथमिक विद्यालय एवं तीन किमी की दूरी पर उच्च प्राथमिक विद्यालय की सुविधायें उपलब्ध थीं। अनुसूचित जाति व जनजाति वर्गों के बच्चों तथा बालिकाओं का अधिक से अधिक संख्या में स्कूलों में नामांकन कराने के उद्देश्य से विशेष प्रयास किये गये। प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकरअब तक प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन लेन वाले बच्चों की संख्या एवं स्कूलों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है। 1950-51 में जहाँ प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये 3.1 मिलियन बच्चों ने नामांकन लिया था वहीं 1997-98

में इसकी संख्या बढ़कर 39.5 मिलियन हो गई। उसी प्रकार 1950-51 में प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 0.223 मिलियन थी जिसकी संख्या 1996-97 में बढ़कर 0.775 मिलियन हो गई। एक अनुमान के मुताबिक वर्ष 2002-03 में 6-14 आयु वर्ग के 82 प्रतिशत बच्चों ने विभिन्न विद्यालयों में नामांकन लिया था। भारत सरकार का लक्ष्य इस संख्या को इस दशक के अंत तक 100 प्रतिशत तक पहुँचाना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि विश्व से स्थायी रुप से गरीबी को दूर करने और शान्ति एवं सुरक्षा का मार्ग प्रशस्त करने के लिये जरूरी है कि दुनिया के सभी देशों के नागरिकों एवं उसके परिवारों को अपनी पसंद के जीवन जीने का विकल्प चुनने में सक्षम बनाया जाये। इस लक्ष्य को पाना तभी सम्भव है जब दुनियाभर के बच्चों को कम से कम प्राथमिक विद्यालय के माध्यम से उच्च स्तरीय स्कूली सुविधायें उपलब्ध कराई जाये।

सर्व शिक्षा अभियान में ग्राम शिक्षा समिति की भूमिका

सर्वशिक्षा अभियान सरकार की एक महत्वाकांक्षी योजना है। सर्वशिक्षा अभियान के घोषित लक्ष्य के अनुसार एक निश्चित समय सीमा के अनदर सभी बच्चों का शत-प्रतिशत नामांकन, ठहराव तथा गुणवत्ता युक्त प्रारम्भिक शिक्षा सुनिश्चत करना है। साथ ही सामाजिक विषमता तथा लिंग भेद को भी दूर करना है।

उक्त सभी मुद्दे समुदाय से जुड़ें हैं। यानी समुदाय को उस बारे बताये बिना तथा उन्हें कार्यक्रमों से जोड़े बिना लक्ष्य की प्राप्ति नहीं की जा सकती। इसीलिये सर्व शिक्षा अभियान अन्तर्गत सामुदायिक सह-भागिता की अनिवार्यता को जारेदार ढंग से रखा गया है। इसमें ऐसी व्यवस्था की गई है जिसमें प्राथमिक तथा मध्य विद्यालयों का स्वामित्व समुदाय के पास हो तथा इन विद्यालयों को कुछ हद तक पंचायतों के प्रति जिम्मेदार बनाया जाये। सामुदायिक भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिये भी इसमें कई व्यवस्था की गई है। प्रत्येक विद्यालय में ग्राम शिक्षा समिति का गठन एक ऐसी ही व्यवस्था है। सर्वशिक्षा अभियान में कार्यक्रम कार्यान्वयन के प्रबन्धकीय ढांचा के अन्तर्गत ग्राम शिक्षा समिति को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है और इस विकेन्द्रीकृत प्रबन्धकीय व्यवस्था के अन्तर्गत ग्राम समिति को महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गई है।

ग्राम शिक्षा समिति का संगठनात्मक स्वरूप

ग्राम शिक्षा समिति ग्राम स्तर पर गठित एक छोटा संगठनात्मक ईकाई है जो खासकर प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के प्रति समर्पित है। यह समिति 15 या 21 सदस्यों का एक संगठन है जिसका गठन प्रत्येक प्राथमिक विद्यालय एवं प्राथमिक कक्षा युक्त मध्य विद्यालय के लिये किया जाता है। सम्बन्धित विद्यालय के प्रधानाध्यापक ही इस समिति के पदेन सचिव होते हैं।

ग्राम शिक्षा समिति	अनु0ज0जा0वर्ग	महिला वर्ग	अन्य वर्ग
प्रावधान	(कुल सदस्यों का कम आधा से कम एक तिहाई महिला)	(कुल सदस्यों का कम आधा से कम एक तिहाई महिला)	(कुल सदस्यों का कम आधा से कम एक तिहाई अन्य)
(क) कुल 15 सदस्य	पुरूष-5 महिला-3	महिला-5(अनुसूचित जनजाति वर्ग की 3 महिला सदस्य मिलाकार)	1+4
(ख) कुल 21 सदस्य	पुरूष-6 महिला-5	महिला-7(अनुसूचित जनजाति वर्ग की 5 महिला सदस्य मिलाकर)	1+6

ग्राम शिक्षा समिति का उद्देश्य

प्राथमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण एक व्यापक लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये भागीदारी एवं लोक सशक्तीकरण आवश्यक है। प्रत्येक प्राथमिक विद्यालय एवं प्राथमिक कक्षा सहित मध्य विद्यालयों में ग्राम शिक्षा समिति का गठन एक ऐसा उपाय है जो जनभागीदारी एवं लोक सशक्तीकरण के लक्ष्य को पूरा करेगी। इसके अलावा ग्राम शिक्षा समिति के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :

1. गांव में प्राथमिक शिक्षा के विकास से अभिरूचि रखने वाले समर्पित एवं समय देने वाले व्यक्तियों को इसमें शामिल होने का अवसर देना।
2. सम्बन्धित विद्यालय के संस्थागत चरित्र को उभारकर शत-प्रतिशत नामांकन, ठहराव एवं उपलब्धि स्तर को अनवरत बनाये रखना।
3. समुदाय के अभिवंचित वर्गों, यथा- महिला, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, मजदूर, किसान, पिछड़ों को समुचित प्रतिनिधित्व देकर समाज के मुख्य धारा से जोड़ना ताकि साझा हितों की रक्षा के लिये इन्हें भी निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त हो।

ग्राम शिक्षा समिति का कार्यकाल

1. ग्राम शिक्षा समिति का कार्यकाल सामान्यतः तीन वर्षों का है।
2. अगर ग्राम शिक्षा समिति के कार्यों से/ निष्क्रियता से अभिभावक असन्तुष्ट हो तो विद्यालय में नामांकित कम से कम 50 प्रतिशत बच्चों के अभिभावक की शिकायत पर आम सभा/ ग्राम सभा द्वारा समिति को बीच में ही भंग कर नई समिति का गठन किया जा सकता है। एक सफल आम सभा में 80 प्रतिशत अभिभावकों की उपस्थिति होनी चाहिये।
3. तीसरे वर्ष के अन्तिम तीन महिने में आम सभा द्वारा नई समिति का गठन नियमानुसार अनिवार्य रुप से करा लिया जाये।

ग्राम शिक्षा समिति के कार्य एवं दायित्व

ग्राम शिक्षा समिति प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण करने की दिशा में अपने गांव के स्कूल के विकास हेतु हर सम्भव कार्य सम्पन्न कर सकती है। ग्राम शिक्षा समिति के सहयोग के बिना सार्वजनीकरण के लक्ष्य को कतई प्राप्त नहीं किया जा सकता। अपने गांव, समाज एवं परिवार के विकास की जड़ शिक्षा में ही है। अतः शिक्षा को जन-जन तक पहुँचाकर राष्ट्रीय हित के इतने महान कार्य को सम्पन्न करने का दायित्व ग्राम शिक्षा समिति को ही प्राप्त है।

प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण

1. 6-12 वर्ष के सभी बच्चे-बच्चियों का नामांकन विद्यालय में करना।
2. सभी नामांकित बच्चे-बच्चियों को विद्यालय में बनाये रखना, इसके लिये सभी सम्भव प्रयास करना।
3. उपलब्धि स्तर में वृद्धि हेतु प्रयास करना।
4. बच्चे नियमित रूप से स्कूल आ रहे हैं या नहीं, इसका देखभाल नियमित रूप से करना। इसके लिये प्रतिदिन ग्राम शिक्षा समिति के दो अलग-अलग सदस्यों को जिम्मेवारी सौंपना अच्छा है। उसके ऊपर भी अध्यक्ष एवं सचिव निगरानी रखें और अनुपस्थिति के कारणों का पता लगाकर उसका निदान खोजें।
5. माता शिक्षक समिति/ अभिवाक शिक्षक समिति का गठन किया जाये, ताकि ग्राम शिक्षा समिति के कार्यों में मदद मिल सके।
6. विद्यालय प्रबंधन में भागीदारी निभाना।
7. मुफ्त पाठ्य-पुस्तक के वितरण की अच्छी तरह देखभाल करना।
8. गांव के दुर्बल एवं अपंग बच्चों का नामांकन करवाना।
9. विद्यालय में अच्छी पढ़ाई प्रतिदिन सुचारू ढंग से चले इसके लिये हर संभव व्यवस्था करना।

10. विद्यालय में मिल-जुलकर समारोह आयोजन करना।
11. ग्राम शिक्षा समिति के निर्णयों के आलोक में विद्यालय कोष का संचालन करना।
12. विद्यालय विकास एवं शैक्षणिक माहौल बनाने के लिये हरसंभव वित्तीय एवं गैर वित्तीय उपायों को सम्पादित करना।
13. ग्राम शिक्षा योजना का निर्माण एवं इसका क्रियान्वयन करना आदि।

अध्यक्ष के कार्य एवं दायित्व

1. मासिक बैठक की अध्यक्षता करना।
2. मासिक बैठक के आयोजन हेतु सचिव को सही समय पर सही परामर्श देना।
3. बैठक में सभी सदस्यों की उपस्थिति सुनिश्चित करना।
4. विद्यालय में नियमित पढ़ाई की व्यवस्था सुनिश्चित करना।
5. सचिव के साथ विद्यालय कोष का संचालन करना।
6. आमसभा को सफलतापूर्वक सम्पन्न कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना एवं इसका कार्यभार ईमानदारी पूर्वक सभी सदस्यों पर सौंपना।
7. मासिक बैठक में सर्वसम्मति से लिये जाने वाले निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना।
8. कार्यवाही पुस्तिका लिखना एवं प्रत्येक बैठक की कार्यवाही का अगले बैठक में सम्पुष्टि करवाना।
9. ग्राम शिक्षा योजना का क्रियान्वयन का अनुश्रवन (देख-रेख) एवं अनुगमन करना।

उपाध्यक्ष के कार्य एवं दायित्व

1. अध्यक्ष की अनुपस्थिति में बैठक की अध्यक्षता करना।
2. वित्तीय कार्यों को छोड़कर अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उनके सभी कार्यों का सफलतापूर्वक सम्पादन करना।
3. सभी महत्वपूर्ण निर्णयों एवं कार्य-सम्पादन में अध्यक्ष के सहयोगी के रूप में कार्य करना।

सचिव के कार्य एवं दायित्व

1. अध्यक्ष के परामर्श से मासिक बैठक बुलाने की कार्यवाही करना।
2. बैठक के निर्णयों के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करना।
3. अध्यक्ष के साथ मिलकर विद्यालय कोश का संचालन करना एवं लेखा-जोखा को कार्यवाही में प्रस्तुत करना।
4. मासिक बैठक में विद्यालयक सुधार योजना प्रस्तुत करना एवं ग्राम शिक्षा योजना का निर्माण एवं क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना।
5. बच्चों का शत-प्रतिशत नामांकन एवं उपस्थिति सुनिश्चित करना एवं ग्राम शिक्षा समिति के माध्यम से क्रियान्वयन करना।
6. ग्राम शिक्षा समिति के नाम से बैंक-खाता खुलवाना एवं अध्यक्ष एवं सचिव सह प्रभारी अध्यापक के संयुक्त हस्ताक्षर से खाता संचालन हो, इसे सुनिश्चित करना।

स्त्रोत

क्रियेटिव कॉमन्स एॅट्रीब्यूशन
हिन्दी विकिपीडिया, मुक्त ज्ञानकोश
शिक्षा शास्त्र की भूमिका -ब्रजभूषन तिवारी
उम्मीदों का शिक्षाशास्त्र- पउल फ्रे

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,16-20**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 16 नवम्बर 2013

अम्बेडकर बनाम गांधी : आलोचना, विरासत और आध्यात्म

अखिलेश रध्वज सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *अम्बेडकर बनाम गांधी : आलोचना, विरासत और आध्यात्म* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *अखिलेश रध्वज सिंह* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

हमारे भारत देश में दो ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें और जिनके योगदान को हमारे लिये विस्मृत कर पाना संभव नहीं। जहाँ एक ओर गांधी जी ने हमें अंग्रेजों से आजाद कराया। वहीं अम्बेडकर ने आजाद भारत का संविधान बनाकर हमें सच्चा और समृद्धिशाली आज दिया है। किन्तु कुछ ऐसे मुद्दे थे जिनपर इन दोनों में मतैक्य नहीं है। अम्बेडकर, महात्मा गांधी और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उग्र आलोचक थे, उनके समकालीनों और आधुनिक विद्वानों ने उनके महात्मा गांधी (जो कि पहले भारतीय नेता थे जिन्होंने अस्पृश्यता और भेदभाव करने का मुद्दा सबसे पहले उठाया था) के विरोध की आलोचना है।

गांधी का दर्शन भारत के पारंपरिक ग्रामीण जीवन के प्रति अधिक सकारात्मक, लेकिन रूमानी था, और उनका दृष्टिकोण अस्पृश्यों के प्रति भावनात्मक था उन्होंने उन्हें हरिजन कह कर पुकारा। अम्बेडकर ने इस विशेषण को सिरे से अस्वीकार कर दिया। उन्होंने अपने अनुयायियों को गांव छोड़कर शहर जाकर बसने और शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया।

गांधी विचार प्रासंगिक हैं

गांधी जी के विचार सार्वकालिक हैं। उनकी पुरातनता और नवीनता को हम इस एक शब्द में आंकलन कर सकते हैं कि अद्भुत हैं उनके विचार।

आज भू-मण्डलीकरण का दौर है और अब राज्य उपनिवेशवाद का स्थान बहुराष्ट्रीय उपनिवेशवाद ने ले रखा है, गांधी जी राज्य उपनिवेश से लड़े थे हमें बहुराष्ट्रीय उपनिवेशवाद से जूझना है क्योंकि दैत्याकार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और उनके साम्राज्य विस्तार को बढ़ावा देने वाले विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व व्यापार संगठन की नापाक तिकड़ी का शिकंजा हम पर कसता जा रहा है। दरअसल गांधी के अनुसार विकास के लिये बुनयादी शर्त थी कि हम अन्दर से सबल बनें, आन्तरिक संसाधनों पर हमारी ज्यादा निर्भरता हो, निर्णय लेने का अधिकार हमारे हाथों में हो और हमारी सारी व्यवस्थायें स्वतंत्र स्फूर्त हों।

* सहायक अध्यापक [अंग्रेजी], सर्वोदय किसान इण्टर कॉलेज [कौड़ीराम] गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

जिस व्यक्ति ने अपने जीवन को मानव समाज और देश को समर्पित कर अहिंसा की ताकत का मूल्य समझाया आखिर उसकी सोच, दर्शन और सिद्धान्त क्या थे, समाज रचना की तकनीक क्या रही होगी, उसका सत्याग्रह कितना प्रासंगिक रहा होगा। इन सब को जानने के लिये सबसे पहले हमें गांधीवाद जैसे शब्द से बचना होगा क्योंकि वाद में जड़ता होती है।

इसके लिये गांधी विचार को जानना जरूरी होगा, क्योंकि विचार दर्शन से प्रवाह हुआ करता है और गांधी दर्शन के मूल में आपको सत्य, अहिंसा, सादगी अस्तेय, अपरिग्रह, श्रम और नैतिकता मिलेगी- जहाँ से स्थानीय स्वशासन, स्वावलम्बन, स्वदेशी विकेन्द्रीकरण, ट्रस्टीशिप परस्परावलम्बन, सह-अस्तित्व, शोषणमुक्त व्यवस्था और सहयोग, सहभाव एवं समानता पर आधारित जागृति ढांचे का अभ्युदय होगा।

किसी से भी पूछने सबसे पहले यही सुनने को मिलता है कि गांधी जी को सत्याग्रह के लिये जाना जाता है, दरअसल गांधी जी के सत्याग्रह का व्यापक अर्थ है कि अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न, दमन करने वाली जनद्रोही भ्रष्ट और शोषण व्यवस्थाओं से असहयोग तथा समाज में शुभ चिंतन और कर्म करने वाले लोगों और संगठनों के बीच समन्वय सहकार। जहाँ तक आज के समय में इसकी प्रासंगिकता का सवाल है तो आज जरूरत है कि हम अपने ढंग से ईमानदारी के साथ सत्याग्रह का सम्यक प्रयोग करें। मूल बात यह है कि हम सत्य पर अडिग हों, साधन शुद्धि पर हमारा भरोसा हो और व्यापक लोकहित पर हमारा बराबर ध्यान लगा रहे। वास्तव में सत्याग्रह होना चाहिये समाज को बेहतर बनने के लिये, निरंकुश राजसत्ता पर जनता के प्रभावी अंकुश के लिये, नया समाज गढ़ने के लिये, जड़ीभूम मूल्यों और ढांचे के ध्वंस के लिये और स्वयं अपने भीतर के कलुषों को भगाने के लिये।

हमेशा यही होता है कि हम अपने महापुरूषों के जन्मदिन और पुण्यतिथियों पर बड़ी बातें करतें है और उनके आदर्शों पर चलने का संकल्प लेते हैं लेकिन फिर अगली सुबह हम उसी जड़ समाज का सक्रिय अंग बन जाते हैं। अब वक्त आ गया है कि हम अपनी इस परिपाटी को छोड़ें और इसके हमें गांधी जयंती से अच्छा मौका नहीं मिलेगा क्योंकि जितनी सामाजिकता और नैतिकबोध का सजीव और निर्मल चित्रण हमें उनकी छवि से मिलेगा उतना किसी अन्य से नहीं।

एक और बात साफ कर देना बेहद जरूरी है गांधी जी बाहर की चीजों का एकदम निषेध नहीं करते, बल्कि वे इसके न्यूनातिन्यून आवश्यकता के पक्षधर हैं, क्योंकि उनका मानना था कि बाहरी शक्तियों के सीमा से अधिक होने पर वे हम पर हावी होती जायेंगी, परिणामस्वरूप हमारी स्वतंत्रता कम होती जायेगी। कुछ विचारकों का मानना है कि गांधी विचार का अनुसरण करके दुनिया से अलग-थलग पड़ जायेंगे। जबकि परिदृश्य एकदम अलग है।

वास्तव में गांधी जी वैश्विक महासंघ की परिकल्पना में सभी राष्ट्रों का स्वतंत्र अस्तित्व है। उनके अनुसार किसी भी राष्ट्र को अन्य राष्ट्रों के शोषण की आजादी नहीं रहेगी और न ही कोई राष्ट्र इतना मोहताज या लाचार होगा कि अन्य राष्ट्र उसके स्वत्व का दोहन या उसकी सम्प्रभुता का अपहरण कर सके। दरअसल गांधी का विचार था कि हमारे दिमाग की खिड़कियां इतनी जरूर खुली होनी चाहिये कि हम बाहर की चीजों का लाभ उठा सकें, लेकिन साथ ही ये भी ध्यान रखना चाहिये कि हमारे दरवाजे इतने न खुल जायें कि बाहर का भीषण अंधड़-तूफान हमारे अंदर दाखिल होकर परखचे उड़ा दे। गांधी जी के अनुसार हमें बाहर की खुली ताजी हवा चाहिये बाहर की सड़ांध नहीं कि जिसके रोगाणु हम पर हमला कर दें।

सेमुअल ने गांधी जी के बारे में कहा था कि गांधी जी ने अपना नेतृत्व प्रदान कर भारतीय जनता को अपनी कमर सीधी करना सिखाया और अकिंचन दृष्टि से परिस्थितियों का सामना करना सिखाया।

आलोचना और विरासत

अम्बेडकर की सामाजिक और राजनैतिक सुधारक की विरासत का आधुनिक भारत पर गहरा प्रभाव पड़ा है। स्वतंत्रता के बाद के भारत में उनकी सामाजिक और राजनीतिक सोच को सारे राजनीतिक हलके का सम्मान हासिल हुआ। उनकी इस पहल ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आज के भारत की सोच को प्रभावित किया उनकी यह सोच आज की सामाजिक, आर्थिक, नीतियों, शिक्षा, कानून और सकारात्मक कार्रवाई के माध्यम से प्रदर्शित होती है। एक विद्वान के रूप में उनकी ख्याति उनकी नियुक्ति स्वतंत्र भारत के पहले कानून मंत्री और संविधान मसौदा समिति के अध्यक्ष के रूप में कराने में सहायक सिद्ध हुयी। उन्हें व्यक्ति की स्वतंत्रता में अटूट विश्वास था और उन्होंने समान रूप से रूढ़िवादी और जातिवादी हिन्दू समाज

और इस्लाम की संकीर्ण और कट्टर नीतियों की आलोचना की है। उसकी हिन्दू और इस्लाम की निंदा ने उसको विवादास्पद और अलोकप्रिय बनाया है, हालांकि उनके बौद्ध धर्म में परिवर्तित होने के बाद भारत में बौद्ध-दर्शन में लोगों की रुचि बढ़ी है।

अम्बेडकर के राजनीतिक दर्शन के कारण बड़ी संख्या में दलित राजनीतिक दल, प्रकाशन और कार्यकर्त्ता संघ अस्तित्व में आये है जो पूरे भारत में सक्रिय रहते हैं, विशेष रूप से महाराष्ट्र में। उनके दलित बौद्ध आंदोलन को बढ़ावा देने से बौद्ध-दर्शन भारत के कई भागों में पुनर्जागृत हुआ है। दलित कार्यकर्ता समय-समय पर सामूहिक धर्म परिवर्तन के समारोह आयोजित उसी तरह करते रहते हैं जिस तरह अम्बेडकर ने 1956 में नागपुर में आयोजित किया था।

कुछ विद्वानों, जिनमें से कुछ प्रभावित जातियों से है का विचार है कि अंग्रेज अधिकतर जातियों को एक नज़र से देखते थे और अगर उनका राज जारी रहता तो समाज से काफी बुराईयों को समाप्त किया जा सकता था। यह राय ज्योतिबा फुले समेत कई थी सामाजिक कार्यकर्त्ताओं ने रखी है।

नारायण राव काजरोलकर ने अम्बेडकर की आलोचना की है क्योंकि उन्हें विश्वास था कि वे खर्च बजाय सब लोगों के बीच, सिर्फ अपनी ही जाति यानि महार पर खर्च करने में करते थे। सीताराम नारायण शिवतारकर भी इससे सहमत है।

आधुनिक भारत में कुछ लोग, अम्बेडकर के द्वारा शुरू किये गये आरक्षण को अप्रासांगिक और प्रतिभा विरोधी मानते हैं।

पिछले वर्षों में लगातार बौद्ध समूहों और रूढ़िवादी हिन्दुओं के बीच हिंसक संघर्ष हुये हैं, 1994 में मुंबई में जब किसी ने अम्बेडकर की प्रतिमा के गले में जूते की माला लटकाकर उनका अपमान किया था तो चारों ओर एक सांप्रदायिक हिंसा फैल गयी थी। और हड़ताल के कारण शहर एक सप्ताह से अधिक तक बुरी तरह प्रभावित हुआ था। जब अगले वर्ष इसी तरह की गड़बड़ी हुई तो एक अम्बेडकर प्रतिमा को तोड़ा गया। तमिलनाडु में ऊँची जाति के समूह भी बौद्धों के खिलाफ हिंसा में लगे हुए हैं। इसके अलावा, कुछ परिवर्तित बौद्धों ने हिन्दुओं के खिलाफ मोर्चा खोल दिया (2006, महाराष्ट्र में दलितों द्वारा विरोध) और हिन्दू मंदिरों में गन्दगी फैला दी, और देवताओं के स्थान पर अम्बेडकर के चित्र लगा दिये। एक कट्टरपंथी अम्बेडकरवादी संस्था बौद्ध पैंथर्स मूवमेंट ने तो अम्बेडकर के बौद्ध-धर्म के आलोचकों की हत्या तक करने का प्रयास किया है।

जब्बार पटेल ने सन् 2000 में डॉ. बाबा साहेब नामक हिन्दी फिल्म बनाई थी। इसमें अम्बेडकर की भूमिका माम्मूटी ने निभाई थी, भारत के राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम ओर सामाजिक न्याय मंत्रालय के द्वारा प्रायोजित, यह फिल्म प्रदर्शन से पहले एक लम्बी अवधि तक विवादों में फँसी रही।

यू. सी. एल. ए. में मानव शास्त्र के प्रोफेसर और ऐतिहासिक नृवंश विवरणकार, डॉ. डेविड ब्लुंडेल फिल्मों की एक श्रृंखला बनाने की दीर्घकालिक परियोजना बनाई है जो उन घटानाओं पर आधारित है जो भारत में समाज कल्याण की स्थिति के बारे में ज्ञान और इच्छा को प्रभावित करती है। ए राएज़िग लाइट डॉ. बी आर अम्बेडकर के जीवन और भारत में सामाजिक कल्याण की स्थिति पर आधारित है।

राजेश कुमार का भीमराव अम्बेडकर और गांधी नाटक।[1] अरविन्द गौड़ के निर्देशन में अस्मिता थियेटर ग्रुप द्वारा पूरे देश में लगातार दलित नेता की बात की जाये तो बाबू जगजीवन राम भी दलित नेताओं में महत्वपूर्ण नेता माने जाते हैं।

जगजीवन राम भारत के प्रथम दलित उप-प्रधानमंत्री एवं राजनेता थे।

बाबू जगजीवन राम के जीवन के कई पहलू हैं। उनमें से ही एक है भारत में संसदीय लोकंत्र के विकास में उनका अमूल्य योगदान। 28 साल की उम्र में ही 1936 में उन्हें बिहार विधान परिषद् का सदस्य नामांकित कर दिया गया था। जब गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1935 के तहत 1937 में चुनाव हुए तो बाबूजी डिप्रेस्ड क्लास लीग के उम्मीदवार के रूप में निर्विरोध एम.एल.ए. चुने गये। अंग्रेज बिहार में अपनी पिट्ठू सरकार बनाने के प्रयास में थे। उनकी कोशिश थी कि जगजीवन राम को लालच देकर अपने साथ मिला लिया जाये। उन्हें मंत्री पद और पैसे का लालच दिया गया, लेकिन जगजीवन राम ने अंग्रेजों का साथ देने से साफ इनकार कर दिया। उसके बाद ही बिहार में कांग्रेस की सरकार बनी, जिसमें वह मंत्री बने। साल भर के अंदर ही अंग्रेजों के गैर-जिम्मेदार रुख के कारण महात्मा गांधी की सलाह पर कांग्रेस सरकारों ने इस्तीफा

दे दिया। बाबूजी इस काम में सबसे आगे थे। पद का लालच उन्हें छू तक नहीं गया था। बाद में वह महात्मा गांधी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में जेल गये। जब मुबई में 9 अगस्त, 1942 को महात्मा गांधी ने भारत छोड़ो आंदोलन की शुरुआत की तो जगजीवन राम वहीं थे। तय योजना के अनुसार उन्हें बिहार में आंदोलन को तेज करना था, लेकिन दस दिन बाद ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद जब अंग्रेज भारत छोड़ने के लिए मजबूर हो गये तो उनकी कोशिश थी पाकिस्तान की तरह भारत के और कई टुकड़े कर दिये जायें, लेकिन शिमला में कैबिनेट मिशन के सामने बाबूजी डिप्रेस्ड क्लास लीग के प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुये और दलितों और शेष भारतीयों के बीच मतभेद पैदा करने की अंग्रेजों की कोशिश को नाकाम कर दिया। अंतरिम सरकार में जब बारह लोगों को लॉर्ड वॉवेल की कैबिनेट में शामिल होने के लिए बुलाया गया तो उसमें बाबू जगजीवन राम भी थे। उनको श्रम-विभाग का जिम्मा दिया गया। इसी दौर में उन्होंने कुछ ऐसे कानून बनाये जो भारत के इतिहास में आम आदमी, मजदूरों और दबे-कुचले वर्गों के हित की दिशा में मील का पत्थर माने जाते हैं। *उन्होंने मिनिमम वेजेज एक्ट, इंडस्ट्रियल डिस्प्यूट्स एक्ट और ट्रेड यूनियन एक्ट लागू कराये, जिन्हें मजदूरों के हित में सबसे बड़े हथियार के रूप में आज भी इस्तेमाल किया जाता है। उन्होंने इम्प्लाइज स्टेट इंश्योरेंस एक्ट और प्राविडेंट फंड एक्ट भी बनवाया। कल्पना कीजिए अगर बाबूजी ने इन कानूनों को न बनाया होता तो आज मजदूरों और कर्मचारियों की कितनी दुर्दशा होती।*

जब लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु के बाद इंदिरा गांधी ने प्रधानमंत्री पद संभाला तो बाबूजी को एक अति कुशल प्रशासक के रूप में अपने साथ लिया। यह भारत के लिये निश्चित रूप से कठिन दौर था। 1962 में चीन और 1965 में पाकिस्तान से लड़ाई हो चुकी थी। गरीब आदमी और किसान भुखमरी के कगार पर खड़ा था। अमेरिका से पीएल-480 के तहत सहायता में मिलने वाला गेहू और ज्वार ही भूख मिटाने का मुख्य साधन बन चुका था। ऐसी विकट परिस्थिति में डॉ. नॉरमन बोरलाग भारत आये और हरित क्रांति का सूत्रपात किया। नई सोच और आधुनिक तकनीक के पक्षधर बाबू जगजीवन राम उस समय कृषि मंत्री थे। उन्होंने ही डॉ. नॉरमन बोरलाग के हरित क्रांति के विचार को कार्यान्वित करने में पूरा राजनीतिक समर्थन दिया। भारत में दो-ढाई साल में ही हालात बदल गये और देश की जरूरत से अधिक खाद्यान्न पैदा होने लगा। भारत में हरित क्रांति के लिये तकनीकी मदद तो निश्चित रूप से डॉ. नॉरमन बोरलाग से मिली, लेकिन भारत के कृषि मंत्री बाबू जगजीवन राम के जबरदस्त राजनीतिक इच्छाशक्ति का प्रदर्शन करते हुए हरित क्रांति के लिए जरूरी प्रशासनिक इंतजाम किया। डॉ0 बोरलाग का आविष्कार था बोना गेहूं और धान, जिसने भारत और पाकिस्तान में भुखमरी की समस्या को हमेशा के लिए खत्म कर दिया। बाद में चीन ने भी इस प्रौद्योगिकी का फायदा उठाया। 1962 और 1965 की लड़ाई के बाद उपजी भूख की समस्या को उन्होंने बहुत ही सूझ-बूझ से परास्त किया। 1971 की भारत-पाकिस्तान जंग में बाबूजी ने जिस तरह से अपनी सेनाओं के लिये राजनीतिक समर्थन दिया वह सैन्य इतिहास में मिसाल बन गया है। बाद में भी जब इंदिरा गांधी का सबसे बुरा दौर था, कांग्रेस के पुराने नेता उनका साथ छोड़ चुके थे, तो बाबू जगजीवन राम ने उनके साथ खड़े होकर उन्हें मजबूती दी थी, लेकिन उन्होंने कभी भी लोकतांत्रिक मूल्यों से समझौता नहीं किया। वह सच्चे अर्थों में भारत निर्माता थे।

भारत के संविधान का निर्माण

अम्बेडकर द्वारा तैयार किया गया संविधान पाठ में संवैधानिक गारंटी के साथ व्यक्तिगत नागरिकों को एक व्यापक श्रेणी की नागरिक स्वतंत्रताओं की सुरक्षा प्रदान की जिनमें, धार्मिक, स्वतंत्रता, अस्पृश्यता का अंत और सभी प्रकार के भेदभावों को गैर-कानूनी करार दिया गया। अम्बेडकर ने महिलाओं के लिए व्यापक आर्थिक और सामाजिक अधिकारों की वकालत की, और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए सिविल सेवाओं, स्कूलों और कॉलेजों की नौकरियों में आरक्षण प्रणाली शुरू के लिए सभा का समर्थन भी हासिल किया, भारत के विधि निर्माताओं ने इस सकारात्मक कार्यवाही के द्वारा दलित वर्गों के लिए सामाजिक और आर्थिक असामानताओं के उन्मूलन और उन्हें हर क्षेत्र में अवसर प्रदान कराने की चेष्टा

की जबकि मूल कल्पना में पहले इस कदम को अस्थायी रूप से और आवश्यकता के आधार पर शामिल करने की बात कही गयी थी, 26 नवंबर, 1949 को संविधान सभा ने संविधान को अपना लिया। अपने काम को पूरा करने के बाद बोलते हुए, अम्बेडकर ने कहा, ''मैं महसूस करता हूँ कि संविधान, साध्य (काम करने लायक) है, यह लचीला है पर साथ ही यह इतना मज़बूत भी है कि देश को शांति और युद्ध दोनों के समय जोड़कर रख सके। वास्तव में, मैं कह सकता हूँ कि अगर कभी कुछ गलत हुआ तो इसका कारण यह नहीं होगा कि हमारा संविधान खराब था बल्कि इसका उपयोग करने वाला मनुष्य अधम था।''

अम्बेडकर ने आध्यात्म का अध्ययन भी शूद्रों एवं दलितों की दृष्टि से किया। यह दृष्टि राजनैतिक नहीं थी, जैसा कि प्रायः कुछ लोगों द्वारा माना जाता है। राजनैतिक सत्ता का सवाल उनके मस्तिष्क में जरूर था, पर वह धर्मान्तरण का मूल सवाल नहीं था। मूल सवाल था सामाजिक समता और सम्मान प्राप्त करने का। इसी सामाजिक दृष्टि से उन्होंने आध्यात्म का तुलनात्मक अध्ययन किया।

इस अध्ययन का आधार क्या था ? निश्चित रूप से वही धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्य थे, जो शूद्र एवं दलित संतों की परम्परा के रूप में शूद्रों एवं दलितों का सारा शोषण हुआ है। इसी के कारण आत्मा, भाग्य, पूर्व कर्म, पुनर्जन्म और स्वर्ग नर्क की आंधी धारणाएँ पैदा हुई हैं।

दूसरा वर्णव्यवस्था और जातिभेद से पूर्ण मुक्ति। तीसरा, देवी देवताओं, अनुष्ठानों, तप तीर्थों, पूजा पाठ आदि से मुक्ति। चौथा, स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के सामाजिक मूल्य। पांचवां, सामाजिक परिवर्तन की स्वीकृति। छठा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण। सातवां परम्परा की सुरक्षा।[2]

आध्यात्म का विकास सिद्धों से होता हुआ कबीर, रैदास के शूद्र एवं दलित आध्यात्म में हुआ। लोकायत और बौद्ध आध्यात्म दोनों अनीश्वरवादी हैं पर लोकायत भौतिकवाद है जबकि बुद्ध का आध्यात्म मध्यममार्गी है। शूद्र एवं दलित संतों ने भौतिकवाद और मध्यम मार्ग दोनों को स्वीकार किया है, किन्तु बुद्ध के अनीश्वरवाद का विकास शूद्र एवं दलित संतों के आध्यात्म में निर्गुणवाद के रूप में हुआ है।

स्रोत

[1]मुक्त ज्ञान कोश, Mohallalive.com
[2]दलित धर्म की अवधारणा, तद्भव दलित विशेषांक; सम्पादक अखिलेश, पृष्ठ संख्या 19

सहायक स्रोत

भारत का संविधान
भारतीय स्वतंतत्रता संग्राम
गांधी वांगमय

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,21-23**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 05 दिसम्बर 2013

ममता कालिया की दृष्टि में समकालीन स्त्री के साथ सलूक युग बोध

डॉ. मधुलिका* एवं मोनिका देवी**

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *ममता कालिया की दृष्टि में समकालीन स्त्री के साथ सलूक युग बोध* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखक *मधुलिका एवं मोनिका देवी* घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

सलूक शब्द मेरे जेहन में कई सड़कों वाले एक चौराहे की तरह खुल रहा है। सलूक स्त्री के साथ समाज का, परिवार का, मर्द का, अन्य स्त्रियों का, आधुनिक समय का, वर्तमान दृष्टिकोण का और पत्रकार का।

समाज की महत्वपूर्ण इकाई परिवार का केन्द्र बिन्दु, पुरूष की साथी, अन्य स्त्रियों की सहयोगी, समय को तसवीर और दृष्टिकोण के सफर की शुरूआत की शर्त के महत्व को कम करके आज नहीं देखा जा सकता। लेकिन उसके इस महत्व को स्वीकार करने में जिन दो शक्तियों ने सबसे सार्थक योगदान दिया है, वे हैं साहित्याकार और पत्रकार। अभी कुछ वर्ष पूर्व तक भारतीय स्त्री का जीवन एक बंद किताब की तरह था। अपने अन्तर्बाह्य के सशक्त, अशक्त और विषाक्त सवालों के प्रति जितनी वह स्वयं अचेत थी, उतना ही समय का हर महकमा।

मुझे आज भी याद आती है अपने परिवार में रह रही स्त्रियों की दुर्दशा। मेरी सगी मामी बारह साल तक अपने पति की उपेक्षा की पात्र बन कर घर में पड़ी रही।

लोग सीरत नहीं सूरत देखते हैं।

उनका दोष सिर्फ इतना था कि वे सांवली थी, मामा गोरे। मामा उन्हें एक नजर देख कर घर से जो गायब हुए, किसी को पता ही नहीं चला वे कहां गये। नाना ने कहा, कोई और होता तो बहू को धक्के मार मायके पहुंचा देता। मेरा धर्म इस बात की गवाही नहीं देता। चलो आधी रोटी खा कर पड़ी रहेगी एक कोने में।'

बारह साल तक छोटी मामी बड़ी मामी के बच्चों को पालती रहीं, पति की मां से लात खाती रही और भोजन के नाम पर घर का बासी सूखा पाती रही, तेरहवें साल मामा एकाएक नमूदार हुए और उनसे मुखातिब मामी ने उनसे इस तिरस्कार का कारण नहीं पूछा, वरन जा कर मंदिर में प्रसाद चढ़ाया कि उनके देवता उनसे प्रसन्न हुए, उनका जीवन सार्थक हुआ। इस बीच उन्हें प्लूरिसी हुई, संग्रहणी हुई मिरगी के दौरे पड़े तब उनके देवता को कोई फर्क नहीं पड़ा। मामी के आगामी वर्ष चेतावनी सुनते ही बीते; देख होश में काम कर नहीं तो तेरा आदमी फिर चला जाएगा।

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, सी. आर. एम. जाट पी. जी. कॉलेज [हिसार] हरियाणा (पंजाब) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)
** शोध छात्रा, पी.एच-डी.

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

लड़कपन में कई बार मैनें मामी से पूछा मामी, सब तुम्हें दुतकारतें हैं, तुम लड़ती क्यों नहीं ? मामी ने हर बार लाचार हांजी-हांजी कहना।' और भी बहुत कुछ देखा; उन वर्षों में परिवार की स्त्रियों का किसी बहू को चूल्हे की जलती लकडी से पीटना, दाल की खदकती बटलोई सिर पर पटकना बीमार गर्भवती औरत के पेट में जोर की लात। उन स्त्रियों की पीड़ा को दूर करने वाला कोई नहीं था।

आज जब सुबह का अखबार उठाती हूं और ऐसे समाचार पढ़ती हूँ 'दहेज में भैंस, टेप और साईकिल न मिलने पर मंजू को जिंदा जला दिया गया,' रूप कुंवर धनलोलुप ससुराल वालों के षडयंत्र का शिकार पुलिस के दरिंदों ने माया त्यागी को सरे बाजार अपमानिक किया 'पति के दुर्व्यवहार से तंग आ कर शकुंतला ने आत्महत्या की' तब मुझे लगता है पहली बार हिन्दुस्तानी औरत को शायद जुबान मिली है। स्त्री की दशा को नगण्य से गण्य बनाने में भारतीय पत्रकारों का अद्‌भुत योगदान रहा है। आज स्त्री के जीवन में व्याप्त आक्रोश, कुंठा, विसंगति आदि को पहली बार अभिव्यक्ति मिल रही है। इस काम की शुरूआत जरूर समाज सुधारकों और विचारकों ने की, लेकिन इसे तीखेपन से रेखांकित किया है। पत्रकार ने कहा कि धौलपुर के बाजार में औरत बेची और खरीदी जाती है कि औरत घर की चारदीवारी के अंदर प्रताड़ना पाती है, कि औरत को नौकरी की आड़ में पीड़ित किया जाता है, इस सबकी खोज और खबर आज अखबार और पत्र-पत्रिकाओं के हवाले से मिलती है। यह कोई कम बड़ा कार्य नहीं है। पत्रकार महिला मुक्ति संगठनों से भी पहले सक्रिय हुआ है और इसी में है उसका अभूतपूर्व महत्व।

यहाँ तक तो सब बड़ा आदर्श और उज्जवल है। लेकिन इसके आगे आता है पत्रकारिता का कृष्ण पक्ष। अगर पत्रकार सचमुच जनमानस को झकझोर कर सचमुच स्त्री के प्रति सार्थक चिंता और चेतना से जोड़ सकता तो यह एक अविस्मरणीय काम होता, क्योंकि उससे पैदा होती स्त्री और समाज के बीच बेहतर तैयारी और समझदारी लेकिन अपनी तमाम प्रखरता के बावजूद भारतीय पत्रकार के लिए और एक 'स्कूप' से ज्यादा कुछ भी नहीं है। स्त्री के साथ हुए सलूक को रेखांकित करना एक खतरनाक और रपटीला रास्ता है, जिसके तहत पत्रकार जरा-सा बहकते ही दलाल या दुकानदार बन सकता है, नहीं तो क्या कारण है कि रोजाना स्त्री की प्रताड़ना की खबर समाज में सरोकार की जगह सनसनी, चिंता की जगह चटपटापन और जागरूकाता की जगह जुगुप्सा पैदा कर रही है ? कुछ अंशों में पत्रकार ने आज औरत के साथ वैसा ही सलूक किया है जैसा समाज के अन्य तबकों ने। उसने उसे एक जिंस भी बनाया है -विकास जिंस। आज पत्रकारिता में सबसे ज्यादा चटाखेदार विवरण जो दे सके -मारू तस्वीरें और गरम खबर, वही बिक्री और लोकप्रियता का मानदंड बन जाता है कि जब माया त्यागी कांड घटित हुआ तो धडाधड सभी पत्रिकाओं ने बलात्कार विरोधी विशेषांक प्रकाशित किये। फर्क सिर्फ यह था कि उन सब पत्रिकाओं के मुखपृष्ठ पर 'बलात्कार' शब्द प्रमुखता से लिखा था- बडे-बडे अक्षरों में और विरोध छोटे-छोटे अक्षरों में। इन पत्रिकाओं का उद्‌देश्य माया त्यागी की पीड़ा बताना कम, अपनी बिक्री बढ़ाना ज्यादा था। यही हाल मथुराकांड के समय देखा गया। कई वर्ष पहले 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' का एक पृष्ठ कुछ-कुछ इसी तरह का होता था -टूटी हुई जिन्दगी।

इन प्रयोगों से पत्रिका की बिक्री के आंकडे बढ़ते हैं, मानवीय या सामाजिक सरोकार धुंधला पड़ता जाता है। धीरे-धीरे लोगों को ऐसी रिपोर्ट पढ़ने का ऐसा ही तटस्थ अभ्यास हो जाता है जैसा फिल्मों के विज्ञापन और गुड़-तिलहन के भाव देखने का। मुँह के रास्ते नितांत शाकाहारी लोग भी ऐसी तमाम पत्रिकाएं बड़े चाव से पढ़ते हैं। जिनमें औरत एक सामिष व्यंजन की तरह परोसी जाती है। पत्रिकाओं के संपादक इस विषय को पहचानते हुए भी इलाज नहीं करते, क्योंकि उनके उपर व्यावसायिक दबाव होते हैं। 'धर्मयुग' में कई कुछ मैटर सिर्फ इसलिए दूसरे मैटर की जगह लगा दिया जाता है था, क्योंकि उसके साथ तैयार चित्र पर्याप्त उत्तेजक नहीं होते थे। ये बाते प्रबुद्ध पाठक से छिपती नहीं है। यही जानकारियाँ 'महाभोज' और 'कमला' जैसे नाटकों को जन्म देती हैं, जहां एक बार फिर औरत जनित चटपटेपन की बिसात बिछायी जाती है। औरत के प्रति अपने सार्थक सरोकार का एक यथार्थपरक दृष्टिकोण स्वयं पत्रकार को खोजना होगा। ताकि उसका सारा अन्वेषण मात्र उत्तेजना की व्यंजन-पुस्तिका बनकर न रह जाये, वरन समाज को सही दिशा की रोशनी दे।

इस प्रकार ममता जी की दृष्टि में दरअसल, पत्रकार वही है, जो समाज जो समाज के अन्य लोग हैं। हमारा पत्रकार हमारे ही समय की पैदावार है आज समाज की इस शाखा ने स्त्री को एक रंगीन बल्ब मान लिया है -उद्योग, व्यवसाय,

विज्ञापन, फिल्म, दूरदर्शन और पत्रकारिता इन सब द्वारा चित्रित उस भारतीय स्त्री से जरा भी मेल नहीं खाती, जिसकी दिनचर्या में आज भी वहीं आश्रय जीवन सी कठोरता और एकल सता मौजूद है।

जीवन चाहे कितना भी आधुनिक हो जाए, घर की औरत आज भी आपकी महाराजिन, महरी, आया, धोबन, भंगिन, नर्स, चपरासी और दासी है। ये सब चतुर्थ श्रेणी की भूमिकाएं है और इन्हें अदा करते-करते औरत स्वयं अपना तेज धूमिल कर बैठती है। ऐसे में जड़ता एक बडी ही सुविधाजनक, सहज और स्वाभाविक, प्रवृति की तरह पनप सकती है। इस जड़ता को बड़े मोहक और रंगीन तरीके से 'ग्लोरिफाई' किया है महिला पत्रिकाओं ने, जिन्होंने स्त्री सरोकार के एकदम तंग पैमाने खींच लिए है आज कमरों की सजावट से लेकर घरेलू कार्य तक सभी महिला पत्रिकायें विश्वसनीय और रोमांटिक बनाने का जोरदार अभियान चलाये रखती है।

अब तो टेली पत्रिकाओं का भी युग है। अनेक ऐसे कार्यक्रम हैं जो स्त्री सम्बन्धी सरोकारों को बहस और विचार का मुद्दा बनाते हैं। इनमें से कुछ सार्थक भी है लेकिन पत्रकार पर हम स्त्री संबन्धी सलूक की बेहतरी की पूरी जिम्मेदारी नहीं डाल सकते। पत्रकार आखिर अपने रोजगार से जुड़ा हुआ जीव है और उसकी सीमाएं है। वह चाहे भी तो बहुत देर तक मसीहा बना नहीं रह सकता। स्त्री को स्वयं अपनी तेजस्विता को अभिव्यक्ति देनी होगी, इधर-उधर की सतही मांगों में न पड़ सबसे पहले उसे समाज से मांगनी होगी समानता फिर शुरू होगी। उसमें और पुरूष में श्रेष्ठता की प्रतियोगिता। सिर्फ एक औरत के प्रधानमन्त्री या मुख्यमन्त्री या गर्वनर बन जाने से समूची स्त्री जाति के प्रति न्याय नहीं हो जाता। स्त्री को समय की मुख्य धारा से जोड़ना होगा, उसे अपने व्यक्तित्व संपन्नता प्राप्त करनी होगी, तभी साहित्यकार और पत्रकार उसका सही प्रतिनिधित्व कर सकेंगे।

संदर्भ

समकालीन पत्रकारिता मूल्यांकन और मुद्दे, संपादक : राजकिशोर, स्त्री के साथ सलूक, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या 148
वही, पृष्ठ संख्या 148
समकालीन पत्रकारिता मूल्यांकन और मुद्दे, पृष्ठ संख्या 149
वही, पृष्ठ संख्या 149
वही, पृष्ठ संख्या 150
समकालीन पत्रकारिता मूल्यांकन और मुद्दे, पृष्ठ संख्या 150
वही, पृष्ठ संख्या 151

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,24-28**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 16 नवम्बर 2013

गांधी जी शिक्षा के माध्यम से महिलाओं की मुक्ति में विश्वास रखते थे

अखिलेश रध्वज सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *गांधीजी शिक्षा के माध्यम से महिलाओं की मुक्ति में विश्वास रखते थे* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *अखिलेश रध्वज सिंह* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

गांधी जी युगनायक थे। उन्होंने न केवल भारत को आजाद कराया अपितु भारतीयों ने विभिन्न कार्यों के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों में जागरूकता लाने का भी पूरा प्रयास किया। गांधी जी की मान्यता थी कि ईश्वर की उपासना तो जरूर करो किन्तु तुम्हारी असली मुक्ति शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव है। उनके विभिन्न विषयों पर अनेक विचार आज भी प्रासंगिक हैं। ''एक आदमी को पढ़ाओगे तो एक व्यक्ति शिक्षित होगा। एक स्त्री को पढ़ाओगे तो पूरा परिवार शिक्षित होगा।''-गांधी जी।

गांधी जी ने महिलाओं की शिक्षा को पर्याप्त महत्व दिया, किन्तु वे जानते थे कि अकेले शिक्षा से ही राष्ट्र निर्धारित लक्ष्य प्राप्त नहीं किये जा सकते। वे सिर्फ महिलाओं की ही नहीं, पुरूषों की भी मुक्ति के लिये समुचित कार्यवाही के पक्षधर थे। शिक्षा के बारे में उनके विचार अनेक समकालीनों से भिन्न थे और शिक्षा उनके ग्राम पुनर्निर्माण तथा उसके माध्यम से राष्ट्र पुनर्निर्माण का मात्र एक हिस्सा, एक प्रमुख घटना थी। उन्होंने एक बार कहा था कि महिलाओं की शिक्षा मात्र ही दोषी नहीं है, हमारी समूची शिक्षा-प्रणाली विगलित है। वे शहरों और कस्बों में रहने वालों की आलोचना करते थे जो जनसंख्या का कुल 10-15 प्रतिशत हैं, और प्रत्येक चीज में लिंग सम्बन्धी भेदभाव को बढ़ावा देते हैं। यंग इण्डिया में 23 मई 1929 को लिखे गांधी जी के एक लेख से पता चलता है कि उन्हें निरक्षरता, स्कूल सुविधाओं का अभाव, भू-स्वामियों के शोषण का शिकार होने और ऐसी ही अन्य सामाजिक आर्थिक अक्षमताओं की कितनी जानकारी थी, जिनका सामना ग्रामीण महिलाओं को करना पड़ता है। उन्होंने लिखा था 'जरूरी यह है कि शिक्षा प्रणाली को दुरुस्त किया जाये और उसे व्यापक जनसमुदाय को ध्यान में रखकर तय किया जाये। उनके अनुसार शिक्षा प्रणाली में बच्चों के साथ प्रौढ़ शिक्षा पर ही बल नहीं दिया जा सके।'

गांधी जी के अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो लड़के-लड़कियों को स्वयं के प्रति अधिक उत्तरदायी बना सके और एक-दूसरे के प्रति अधिक सम्मान की भावना पैदा कर सके। महिलाओं के लिये ऐसा कोई कारण नहीं है कि वे अपने को

* सहायक अध्यापक [अंग्रेजी], सर्वोदय किसान इण्टर कॉलेज [कौड़ीराम] गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

पुरूषों का गुलाम अथवा पुरूषों से घटिया समझें, उनकी अलग पहचान नहीं है बल्कि एक ही सत्ता है। अतः महिलाओं को सलाह है कि वे सभी अवांछित और अनुचित दबावों के खिलाफ विद्रोह करें। इस तरह के विद्रोह से कोई क्षति होने की आशा नहीं है। इससे तर्कसंगत प्रतिरोध होगा और पवित्रता आयेगी।

गांधी जी शिक्षा के माध्यम से महिलाओं कि मुक्ति में विश्वास रखते थे और उन्होंने भारतीय समाज के कायाकल्प की दिशा में चलायी गयी राजनीतिक सामाजिक अथवा विकास सम्बन्धी गतिविधियों में महिलाओं के प्रति कोई भेदभाव नहीं रखा। सामाजिक निरंकुशता और पुरूष प्रधानता की वजह से महिलाओं की जो दुर्दशा हुई, उसका गांधी जी को भलीभांति ज्ञान था।

बच्चों के साथ प्रौढ़ शिक्षा पर उनके अनुसार जिस शिक्षा प्रणाली में बल नहीं दिया जायेगा, वह उपयुक्त नहीं हो पायेगी। भारत में जो गिनी-चुनी शिक्षित महिलायें हैं, उन्हें पश्चिमी ऊँचाइयों से नीचे उतारकर देश के मैदानों में लाना होगा। उनकी उपेक्षा के लिये निश्चय ही पुरूष जिम्मेदार हैं, उन्होंने महिलाओं का अनुचित इस्तेमाल किया है किन्तु जो महिलायें अन्धविश्वासों से ऊपर उठ चुकी हैं, उन्हें सुधार के लिये रचनात्मक कार्य करने होंगे।

यद्यपि भारतीय परम्परा में आमतौर पर महिलाओं को सम्मान मिला है और शायद भारत एक मात्र ऐसा देश है जहाँ करोड़ों लोग अर्धनारीश्वर की पूजा करते हैं और जहाँ मनु ने यह घोषणा की कि जहाँ नारी का सम्मान होता है वहाँ देवता प्रसन्न रहते हैं। यह सत्य है कि भारतीय महिलायें आज भी कुल मिलाकर निरक्षर और अशिक्षित हैं तथा वांक्षित रुप में अपनी आवाज संसद या विधानमण्डलों में उठाने में असमर्थ हैं। ग्रेट वोमेन ऑफ इण्डिया की भूमिका में महान चिंतक और राजनेता, भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ0 एस0 राधाकृष्णन ने कहा है,''यह तथ्य अधिक महत्वपूर्ण है कि हम मनुष्य हैं न कि वे भौतिक विशेषतायें जो हमें एक-दूसरे से अलग करती हैं।''

हमारी शिक्षा प्रणाली अत्यन्त विशाल है जहाँ 17.5 करोड़ विद्यार्थी और 35 लाख शिक्षक हैं। प्रत्येक जिला मुख्यालय में कम-से-कम एक कला महिला कॉलेज है; फिर भी ए0सी0फर्नाडो के अनुसार शिक्षा प्रणाली में लड़कों का पक्ष लिया जाता है। लड़के-लड़कियों के विस्तृत भेदभाव इस तथ्य से स्पष्ट दिखायी देता है कि 1993-94 के दौरान प्राथमिक और मिडिल स्कूलों में कुल दाखिला 15 करोड़ बच्चों में लड़कों की संख्या लड़कियों के मुकाबले 2.5 करोड़ अधिक थी। शहरी लड़कियाँ देश में उच्च शिक्षा का अधिकतम लाभ उठा रही हैं, क्योंकि वे उच्च और मध्यमवर्ग से सम्बन्ध है। उनकी उपस्थिति उन क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में बढ़ रही, जो लड़कों का गढ़ समझे जाते थे, जैसे- रसायन, इंजीनियरिंग, ऐयरोनाटिकल इंजीनियरिंग, इलेक्ट्रानिक्स, संचार और पत्रकारिता शिक्षा उत्पादन इंजीनियरिंग, चिकित्सा, व्यापार प्रबन्ध और कम्प्यूटर विज्ञान अनेक युवतियों के प्रवेश के आद अथवा परीक्षा का परिणाम आने तक अन्त में घरेलू महिला बनना पड़ता है। वे जान-बूझकर अपनी शिक्षा और व्यावसायिक लक्ष्यों को परिवार के जीवन के लिये त्याग देती हैं। यह बड़ी ही दुर्भाग्यपूर्ण समाज वैज्ञानिक अवधारणा है,क्योंकि एक डॉक्टर, इंजीनियर और व्यापार प्रबन्ध बनाने में कई लाख रूपये की लागत आती है अगर उसकी शिक्षा का इस्तेमाल समाज की बेहतरी के लिये नहीं होता, तो उस पर खर्च समूची धनराशि व्यर्थ हो जाती है। हालांकि अनेक शादीशुदा प्रशिक्षित महिलायें जो घरों में रहती हैं वे बच्चों का पालन पोषण बड़ी दक्षता से करती हैं और घरेलू गतिविधियों का प्रबन्ध करती हैं, यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

सरकारी और प्राइवेट संस्थानों की घरों में रहने वाली व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित महिलाओं को सेवाओं का लाभ उठाने का प्रयास करना चाहिये। रोजगार, काम के घण्टें आदि परम्परागत नियमों को बदलना होगा ताकि काम की इच्छुक महिलाओं की विशेष आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। कार्यस्थलों पर शिशुओं को रखने के प्रबन्ध भी किये जा सकते हैं। ऐसी कामकाजी महिलाओं को लाने, ले जाने की सुविधायें भी प्रदान की जा सकती हैं।

गांधी जी के विचारों को ध्यान में रखते हुये पहला उपाय यह करना होगा कि निचले स्तर पर शिक्षा को व्यावसायिक बनाया जाये। स्कूल स्तर पर महिलाओं को विशेष कौशल का प्रशिक्षण दिया जा सकता है। हमें कई लाख स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। ऊपरी मिडिल स्कूल से लेकर वरिष्ठ माध्यमिक स्तर पर प्रशिक्षण का एक खास पाठ्क्रम तैयार किया जा सकता है। कम्प्यूटर शिक्षा भी निचले स्तर से ही शुरू की जा सकती है। किसी लड़के या लड़की के हायर सेकेण्ड्री परीक्षा पास करने तक उन्हें रोजगार के लिये दक्ष बना दिया जाना चाहिये। माध्यमिक स्तर पर किताबी शिक्षा की मात्रा कम

की जा सकती है, व्यवसायोन्मुखी जानकारी और स्कूल के पुस्तकालय, प्रयोगशाला प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया जा सकता है। अगर अधिक प्रशिक्षण सुविधाओं की आवश्यकता है तो भावी कर्मचारियों को प्रशिक्षण सहायता देने के लिये स्थानीय निगम आगे आ सकते हैं।

उन स्कूलों और कॉलेजों में जहाँ लड़कियों और महिलाओं की संचसा अधिक हो, वहाँ डिजाइनिंग, ड्राइंग, प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल, मिडवाइफरी, घरेलू अर्थ प्रबन्ध, पुस्तकालय, विज्ञान आंकड़ा, प्रोसेसिंग, बुजुर्गों की देखभाल, विज्ञापन कापीराइटिंग, सांख्यिकी, सेनेमाटोग्रैफी, बागबानी और असंख्य ऐसे ही पाठ्यक्रम अवश्य शुरू किये जाने चाहिये, जो खासतौर से महिलाओं और लड़कियों के लिये तैयार किये गये हों, इससे देश अगली शताब्दी की चुनौतियों का सामना कर सकेगा। इन नये प्रशिक्षणों को युक्तिसंगत ढंग से मानवीकि, विज्ञान और सामाजिक विज्ञानों के परम्परागत पाठ्यक्रमों के साथ जोड़ा जाना चाहिये।

भारतीय नारी की क्षमता और किसी भी उन्नतशील देश की नारी से कम नहीं है। अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ उन्नतिशील देशों में नारियों की पुरूषों के समान लगभग प्रत्येक क्षेत्र में समान अवसर प्राप्त हैं, वहीं भारतीय नारियों के सामने व्यावहारिक रूप में अवसरों की कमी है। संविधान में यद्यपि सिद्धान्त रूप में और स्त्री और पुरूष को समान अधिकार दिये गये हैं, पर व्यवहार में वह बात नहीं है और अनेक सामाजिक बाधायें उनके विकास में बाधक हैं। अतः नारियों को व्यावहारिक रूप से समान अधिकार मिलना चाहिये। परन्तु साथ ही साथ हमें अपनी संस्कृति और सभ्यता की उपेक्षा नहीं करनी होगी। महिलाओं की शिक्षा में भी हमें उनकी उन व्यवहारिक कठिनाइयों पर ध्यान देना हेगा जो शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर आती है। इनकी शिक्षा, पाठ्यक्रम आदि के निर्धारण में नारी जाति की स्वाभाविक आवश्यकताओं का ध्यान रखना होगा। पुरूष और स्त्री के लिये एक ही प्रकार के पाठ्यक्रम के निर्धारण से उनका उचित विकास नहीं होगा। शिक्षा के क्षेत्र में यदि प्राथमिक शिक्षा स्तर तक सह-शिक्षा भी दी जा सकती है। परन्तु अधिक उत्तम हो कि देशभर में अधिक-से-अधिक बालिका विद्यालय खोले जायें।

अगस्त 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् यह परिवर्तन और भी तीव्रगति से हो रहे हैं तथा भारतीय नारी अपने परम्पराबद्ध स्वाभाविक विशेषता से मुक्त होने लगी। स्वतंत्र भारत में महिलायें आज अधिकाधिक संख्या में वैतनिक एवं लाभपूर्ण व्यवसायों और कामधन्धों में आने लगी हैं। इस देश में समाज के निम्न वर्ग की औरतें तो हमेशा से ही मजदूरी करती रहीं हैं, किन्तु उच्च वर्ग की महिलायें अधिकतर अपने घरों तक ही सीमित रही हैं। स्वतंत्र भारत में अब महिलायें घर की चारदीवारी से निकलकर इन धन्धों में जा रहीं हैं जिन पर अब त्तक पुरूषों का आधिपत्य था। यह एक अपूर्व घटना है और एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में भारत की विशेषता भी है। सन् 1991 की जनगणना के अनुसार केवल 7.58 प्रतिशत महिलायें ही केन्द्र सरकार में कार्यरत हैं। 1995 के कुछ आंकड़ों के अनुसार निजी सार्वजनिक क्षेत्र में महिला कामगारों का प्रतिशत केवल 15.36 है। अतः इससे पता चलता है कि पांच वर्षों में इनमें दोगुनी वृद्धि हुई।

इससे स्पष्ट होता है कि समाज के इतने विकास के बाद भी आज महिलायें कार्योजन के क्षेत्र में प्रगति बहुत कम कर पायी है क्योंकि अभी भी उच्च शिक्षण-प्रशिक्षिण प्राप्त युवतियों की तीन-चौथाई संख्या रोजगार क्षेत्र में नहीं उतर पाती। विशेष रूप से तकनीकी व्यावसायिक क्षेत्रों के लिये किये गये प्रशिक्षण का लाभ राष्ट्र को नहीं मिल पाता क्योंकि कुछ रूढ़ियाँ उनमें बाधक हैं और प्रशिक्षण और रोजगार क्षेत्रों में ठीक सामंजस्य नहीं बैठाया जा सका है। एक ओर तो बेरोजगारी है, दूसरी ओर रोजगार क्षेत्रों को योग्य व्यक्ति नहीं मिलते हैं। लड़कियों, महिलाओं के मामले में तो उनका प्रशिक्षण भी समाज के काम नहीं आता।

भारत में महिलाओं की शिक्षा चूँकि ज्यादा नहीं हो पाती है इसलिये महिलाओं की ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिये कि बालिकाओं को हाई-स्कूल और इण्टरमीडिएट करने के साथ-साथ कोई ऐसी शिक्षा हो जो उनकी सभ्यता और संस्कृति से जुड़ी हुई हो और उस शिक्षा के द्वारा वह अपनी जीविका चला सके। जिससे उन्हें अपनी जरूरत की सभी चीजों के लिये किसी और के ऊपर निर्भर न होना पड़े। इसलिये प्रत्येक बालिका को शिक्षा के साथ ऐसी कला सिखायी जाये जो उसको अपने घर में रहकर ही स्व-रोजगार करके अपनी तथा अपने परिवार की जीविका चला सके।

हमारे आज के समाज की सबसे बड़ी मांग यही है कि हम दूसरे के ऊपर निर्भर न होकर स्वयं अपने देश के ऊपर निर्भर रहें। इसके लिये प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा के अनुसार रोजगार करने की जरूरत है, जिससे कि हमारा देश आगे बढ़ सके और अन्य देशों की तरह कन्धा से कन्धा मिलाकर हम भी विकसित देशों में अपना नाम कर सकेंगे। आज लड़कियों की शिक्षा के नाम पर बस उसे साक्षर बनाया जाता है, लोगों का नजरिया अभी भी स्त्री शिक्षा के प्रति बहुत पिछड़ा हुआ है। लड़कियों को स्नातक या स्नात्कोत्तर कराने के बाद उसकी शादी कर देते हैं, ये नहीं सोचते कि आगे चलकर क्या करेंगी। बचपन से ही उसकी शिक्षा का कोई उद्देश्य नहीं होता है, इसलिये आवश्यकता है समाज को स्त्री शिक्षा के बारे में सोचने के लिये कि स्त्रियों की शिक्षा रचनात्मक ढंग से होनी चाहिये, जिसके कारण वे परम्परागत शिक्षा की आवश्यकता महसूस करें। जिससे वे आत्मनिर्भर बन जायेंगी और समाज में प्रतिष्ठा बढ़ेगी और समाज की भी प्रगति होगी। 1991 की जनगणना के अनुसार पुरूषों में साक्षरता दर 63.86 प्रतिशत और महिलाओं में 39.42 प्रतिशत है। इस प्रकार महिला और पुरूषों की साक्षरता में दुगुने का अन्तर है। 1993-94 में प्राथमिक स्तर पर 42.9 प्रतिशत बालिकायें पंजीकृत थीं जबकि 1950 में केवल 28.1 प्रतिशत पंजीकृत थीं। इसी प्रकार प्राथमिक स्तर पर (कक्षा 1-5) पर केवल 1980-81 में 62.5 प्रतिशत लड़कियाँ विद्यालय छोड़ देती थीं, जबकि 1993-94 में यह घटकर 39 प्रतिशत हो गया। लेकिन यह विकास भी बहुत कम है। इसके पीछे कारण यह प्रतीत होता है कि वर्तमान शिक्षा स्त्रियों के लिये अनुपयोगी हो गयी है। साथ ही विद्यालयी शिक्षा में अरूचि माता-पिता की सहायता आर्थिक तंगी, विद्यालयों का अभाव आदि कारण भी स्त्री-शिक्षा में बाधक पाये गये हैं। इन तमाम समस्याओं को दूर करने के लिये हमें अपने सामाजिक परिवेश एवं अपनी संस्कृति की तरफ देखना होगा जिनसे ये स्त्रियाँ जुड़ी हुई हैं। महिलाओं द्वारा अनेक परम्परागत उत्पाद जैसे पत्तल, दोने, पापड़, ईंट, मिट्टी के बर्तन, बर्तनों पर फूल-पत्तियाँ बनाना तथा उनकी रंगाई करना, चटाई, कालीन, आचार, मुरब्बा आदि तैयार किये जा सकते हैं जिनको करने के बाद महिलायें अपनी स्थिति में सुधार ला सकती हैं।

लोक विद्या की अवधारणा स्त्रियों को इन्हीं समस्याओं को देखते हुये अत्यन्त समीचीन प्रतीत होती है। जिनके द्वारा वह अपनी हुनर व कलाओं, उद्योग आदि के द्वारा आर्थिक सम्पन्नता एवं शिक्षा भी प्राप्त कर सकती हैं। वैश्वीकरण के इस दौर में लोक विद्याओं की भूमिका और अधिक सशक्त प्रतीत होती है। जिसमें हमें अपनी ही प्रौद्योगिकी के द्वारा आत्म निर्भरता, स्वावलम्बन आर्थिक और विकास का अवसर प्राप्त हो सकेगा। जब देश में राष्ट्रीय पूंजी का अभाव हो और सभी को सरकारी नौकरी मुहैया नहीं की जा सकती, ऐसी स्थिति में भारतीय अतीत की खोज करने की आवश्यकता जान पड़ती है। आज हमने आटा-पिसाई, तेल-पिराई, चावल-कुटाई और फलों तथा सब्जियों को सुखाने की व्यवस्था को भी बड़ी-बड़ी मिलों और विदेशी कम्पनियों के जिम्मे सौंप दिया है, यह पराश्रित हमें गरीबी, बेरोजगारी और गुलामी की ओर ले जा रही है।

शिक्षा पद्धति मस्तिष्क, शरीर और आत्मा तीनों का विकास करती है

भारतीय नारी परिवार, समुदाय और समाज में तभी उत्साहपूर्वक अपनी भूमिका का निर्वाह कर सकती है, जबकि सामाजिक जीवन में उसके काम और जीवन की दशाओं में सुधार होगा और वह स्वयं को सामाजिक, आर्थिक व मानसिक रूप से बन्धनमुक्त कर पायेगी। स्त्रियों को ऊँचा उठाने का दायित्व सम्पूर्ण व्यवस्था का है। इसके लिये सम्पूर्ण समाज को जागृत करने की आवश्यकता है, क्योंकि उनकी समस्यायें एकांगी न होकर समस्त समाज से जुड़ी हुई है। तभी हमारा देश आगे बढ़ सकेगा।

वर्धा शिक्षा योजना शैक्षिक

सुधार की एक ऐसी योजना थी, जो महात्मा गांधी के शैक्षिक विचारों पर आधारित थी। इसे बुनियादी शिक्षा या नई तालीम के नाम से भी जाना जाता है। जब वर्धा में बुनियादी शिक्षा का मसौदा बन रहा था तो वहाँ जाकिर हुसैन, के0 टी0 शाह, आचार्य कृपलानी, आशा देवी आदि अनेक लोग मौजूद थे। बापू ने पूछा, ''केटी, अपने बच्चों के लिये कैसी शिक्षा

तैयार कर रहे हैं, सब चुप थे। फिर केटी ने पूछा, बापू आप ही बताये ना कैसी शिक्षा हो, बापू ने कहा, केटी अगर मैं किसी कक्षा में जाकर यह पूँछ कि मैंने एक सेब चार आने का खरीदा और उसे एक रूपये में बेच दिया तो मुझे क्या मिलेगा। मेरे इस प्रश्न के जबाव में अगर पूरी कक्षा यह कह दे कि आपको जेल की सजा मिलेगी तो मानूगा कि यह आजाद भारत के बच्चों की सोच के मुताबिक शिक्षा है। बापू के इस सवाल पर सब दंग थे। वास्तव में किसी व्यापारी को यह हक नहीं है कि वह चार आने की चीज पर बारह आने लाभ कमाये। इस तरह इस प्रश्न के माध्यम से नैतिक शिक्षा का एक संदेश बापू न बिना बताये ही दे दिया। अब कौन कह सकता है कि बापू एक महान संत, दार्शनिक और राष्ट्रीय नेता होने के साथ शिक्षाविद ही थे। हमारी बुनियादी शिक्षा पद्धति मस्तिष्क, शरीर और आत्मा तीनों का विकास करती है। साधारण शिक्षा पद्धति केवल मस्तिष्क के विकास पर ही बल देती है। नई तालीम कातने और झाडू देने तक ही सीमित नहीं है। ये अति आवश्यक ही क्यों न हो यदि इनसे उक्त तीनों शक्तियों का सामंजस्ययुक्त विकास नहीं होता तो इसका कोई मूल्य नहीं है।

स्रोत

शिक्षा विमर्श; एक शैक्षिक एवं साहित्यिक पत्रिका
डी0 जी0 तेंदुलकर- मोहनदास करमचंद गांधी का जीवन, आठ खण्डों में
गांधी : बेहायिंड द मास्क ऑफ डिविनिटी
यंग इण्डिया में प्रकाशित गांधी जी के लेख

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,29-33**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 16 जनवरी 2014

कृष्णा सोवती के औपन्यासिक चिंतन पर एक दृष्टि

डॉ. प्रभा दीक्षित*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *कृष्णा सोवती के औपन्यासिक चिंतन पर एक दृष्टि* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *प्रभा दीक्षित* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

साहित्य में भावनात्मक स्तर पर भले ही कविता को शीर्षस्थ स्थान मिला हो, किन्तु विषयवस्तु पर सीधे लेखन के बाद यदि अपनी पूरी बात क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत करनी हो तो उपन्यास लेखन एक सशक्त विधा के रूप में चिन्हित किया जा सकता है। हर लेखक के ऊपर अपने देश काल की सामाजिक स्थिति तथा पूर्व की साहित्यिक परम्परा का प्रभाव पड़ना अनिवार्य है। परतंत्र भारत में पैदा होकर एवं स्वतंत्र-भारत में कलम उठाने वाली कृष्णा सोवती को भी अपने लेखन से पूर्व उपन्यास लेखन की समृद्ध परम्परा प्राप्त हुई थी। मुंशी प्रेमचंद्र, उपेन्द्र नाथ अश्क, जैनेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, रांगेय राघव आदि के बाद 1950 से 1975 तक जो लेखिकायें हिन्दी साहित्य में ऊभर कर आईं, उनमें कृष्णा सोवती का अपना विशिष्ट स्थान है। कथित भारतीय स्वतंत्रता के बाद भले ही भारत की सामाजिक स्थिति में स्त्री के पक्ष में कोई बड़ा परिवर्तन न हुआ हो, किन्तु वैधानिक रूप में लिङ्गभेद की समाप्ति एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के कारण पहली बार महिला लेखिकायें स्त्री की सामाजिक स्थिति एवं स्त्री पुरूष सम्बन्धों पर खुलकर लिखने का प्रयास करने लगी थीं। कृष्णा अग्निहोत्री का उपन्यास 'बात एक औरत की', मृदुला गर्ग का 'उनके हिस्से की धूप' तथा 'चितकोबरा', शशिप्रभा शास्त्री का 'सीढ़ियाँ', कान्ता भारती का 'रेत की मछली', मेहरून्निशा परवेज का 'कोरजा', मन्नू भण्डारी का 'महाभोज', मंजुल भगत का इनारो, कृष्णा सोवती का 'डार से बिछुड़ी', मित्रो मरजानी आदि उपन्यास इसी काल की देन रहे हैं। कहना न होगा कि भारतीय-स्वतंत्रता के लिये अहिंसा-आन्दोलन के साथ लाखों लोगों ने अपने प्राणों की आहुति दी थी, मगर प्रेमचंद्र के शब्दों में जॉन के स्थान पर गोविन्द के बैठने से आम जनता के सपने साकार नहीं हुये। आजादी के एक दशक के भीतर ही यह सत्य उभरकर आम जन के सामने स्पष्ट हो चुका था। आजादी के समय भारत-पाक विभाजन का घाव अभी भरा भी नहीं था कि पूंजीवादी प्रजातंत्र की आर्थिक नीतियों के कारण जहाँ चंद समृद्ध-वर्ग के लोग और अधिक समृद्ध हुये, वहीं आम जनता, बेरोजगारी, मंहगाई की मार से कराह उठी। जनता के नाम पर बनी जन-कल्याण की आर्थिक योजनायें

* प्राचार्या, श्री स्वामी नागा जी बालिका डिग्री कॉलेज [भरूआसुमेरपुर] हमीरपुर (उत्तर प्रदेश) भारत। (आजीवन सदस्य)

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

जहाँ धनवानों को और अधिक धनवान बनाती रही, वहीं जनता के निचले पाये के लोग भिखारी की संख्या में वृद्धि करते रहे। घोर अभावों के कारण नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन होता रहा; जिसकी प्रतिक्रियास्वरूप भ्रष्टाचार बढ़ता गया जो वर्तमान में चरम पर पहुँच चुका है। राजनीति के व्यवसायिकरण के कारण शोषित पीड़ित मजदूर किसान स्त्री दलित बच्चे कुपोषण और तिल-तिल कर मृत्यु के ग्रास बने। इस सबका व्यापक प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा और प्रेमचंद्र के बाद मार्क्सवाद से प्रभावित प्रगतिवाद या जनवाद के नाम से जन पक्षधर रचनाकारों की पीढ़ी अस्तित्व में आई। इस पीढ़ी की लेखिकाओं की भांति कृष्णा सोवती को मार्क्सवाद से प्रभावित प्रगतिवादी खेमे में तो नहीं चिन्हित किया जा सकता मगर यथार्थवादी ढंग से स्त्री समस्याओं को फ्रायड के मनोविश्लेषण के आधार पर मौलिक ढंग से चित्रण करने का श्रेय दिया जा सकता है। ''सोवती जी नारी को मनोविज्ञान का आधार देकर उसका मनोविश्लेषण करती हैं। उनकी नारी समाज का विरोध करते हुये अपने ऊपर लगाये गये निरर्थक बन्धनों से मुक्त होकर सभी सामाजिक नैतिक मूल्यों को चुनौती देती है जो उसके अस्तित्व के प्रश्न को मिटाता है।''[1]

स्वतंत्र-भारत के कथा साहित्य में यौन सम्बन्धों की उन्मुक्तता का चित्रण कई लेखिकाओं ने अपने अपने ढंग से किया है; परन्तु अपने समय में जो लेखकीय जोखिम कृष्णा सोवती ले रही हैं, वैसी दूसरी मिसाल दृष्टिगत नहीं होती। यद्यपि पंजाब की पृष्ठभूमि पर भारत-पाक विभाजन पर आधारित उनका पहला उपन्यास 'डार से बिछुड़ी' जो 1960 में प्रकाशित हुआ था, जिसमें अपने परिवार से बिछुड़ी हुई एक स्त्री पाशो परायेपन की मार झेलती हुई एक त्रासद जीवन की चुनौती को स्वीकार करती है। यद्यपि इस प्रारम्भिक उपन्यास में भारतीय नारी के परम्परागत आदर्शों को स्थापित किया गया है किन्तु उस काल की नारी का यह यथार्थपूर्ण चित्रण है। पाशो का पूरा जीवन एक भयावह त्रासदी का महाकाव्य है। पाशो की मां एक मुस्लिम शेख के साथ जुड़ गई थी जिसका कलंक, सामाजिक प्रतिशोध, दुख व्यंग्य जाने क्या-क्या नन्हीं बालिका पाशो को झेलना पड़ा किन्तु वह सहन करती रही, घर लौटी भी, स्वाभाविक प्रेम भी प्राप्त हुआ मगर समाज के भय से शेख उसका विवाह पुनः एक दीवान जी से करते हैं जहां उसके पहली बार पूर्णता प्राप्त होती है, मगर दीवान जी की मृत्यु के बाद वह फिर डार से अलग हो जाती है। सामूहिक रखैल बन जाती है। वह पूरा जीवन भयावह दुखों में काट कर पुन: घर आ जाती है। पूरा कथानक एक स्वाभाविक ढंग से बुना गया है जो अपने काल की नारी के जीवन की यथार्थ ट्रेजडी को चरम-स्थिति प्रदान करती है। यही लेखिका की लेखन शैली का उत्कर्ष है।

इसके साल भर बाद 1961 में कृष्णा सोवती का बहुचर्चित उपन्यास 'मित्रो मरजानी' प्रकाशित होता है। जिसने साहित्य जगत में विशेषत: पुरूष साहित्यकारों के बीच तहलका मचा दिया था। ध्यातव्य है कि भारत में स्त्री और पुरूष स्वभाव या गुणों के विभाजित स्वरूप को देखने का पुरूष वर्ग आदि हो चुका है। सेक्स सम्बन्धी जिन अतृप्त इच्छाओं, आकांक्षाओं को व्यक्त करना पुरूष वर्ग की दरियादिली या स्त्री पर थोप कर उसे लांछित किया जाता रहा उन्हीं अतृप्त आकांक्षाओं को उपन्यास की नायिका मित्रो मुँहफट तरीके से गर्व के साथ व्यक्त करती है। वह पहली पर अपनी यौन आकांक्षाओं का खुलासा करते हुये वात्स्यायन के इस कथन को सत्य प्रमाणित कर देती है कि एक स्त्री को पूर्ण सन्तुष्टि के लिये एक से अधिक पुरूषों की आवश्यकता होती है। सिद्धान्त की बात अलग होती है, मगर व्यवहार में एक स्त्री की आत्मस्वीकृति वह भी बेलाग शब्दों में, लोगों को हजम नहीं होती और ऐसे चरित्र की रचयिता कृष्णा को विवादास्पद बना देती है। इस उपन्यास को पढ़ते हुये सहज ही फ्रांसीसी, नारीवादी लेखिका सीमोन द बोउवार की याद आती है, जिसने अपने यौन सम्बन्धों और यौनिक इच्छाओं का खुलकर वर्णन किया है। मित्रो सारे जमाने को चुनौती देते हुये पुरूषों की भांति अपनी बातें नि:संकोच कहती है। हां! उसके हृदय में मानवीय संवेदनायें हिलोरें लेती हैं जो उसके चरित्र के कठोर विपक्ष में दृष्टिगत होती हैं। स्वयं कृष्णा सोवती इसी उपन्यास में लिखती हैं ''किसी भी घर गृहस्थी के आंगन में कहीं भी मित्रो की आदिम गंध सूंघी जा सकती है।''[2] जब एक स्त्री परम्परा से हटकर आत्मस्वीकृति के साथ ऐसे कथन व्यक्त करती है, जिसे पुरूष या तो खुद व्यक्त करता है या गाली के रूप में प्रयुक्त करता है, तो लोगों का चौंकना स्वाभाविक है। पुरूष हमेशा स्त्री को पहचानने का दावा करता है, तब क्या एक स्त्री ऐसा नहीं कर सकती, लेखिका ने अपने नारी पात्र के माध्यम से पुरूषों को पहचानने का दावा किया है, वह भी यौनिक सम्बन्धों में मेरे विचार से यही बात लेखिका की मौलिकता एवं साहित्य को विशेष प्रदेय के रूप में चिन्हित की जानी चाहिये।

मित्रो (सुमित्रावन्ती) एक भरे पूरे परिवार की बहू है। वह नारी जाति के परम्परागत आदर्शों को जानती है। परिवार में देवर या जेठ के प्रति सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करती है। जो अन्य बहुयें नहीं करतीं। वह एक कामी मां की कोख से जन्मी है जिसे वह स्वयं स्वीकार करती है; और नैतिक मान्यताओं की धज्जियाँ उड़ाती हुई अपनी अतृप्त वासना की आकांक्षा हंसी हंसी में अपनी देवरानी या जेठानी से कह डालती है ''पति उसका रोग नहीं पहचानता, बहुत हुआ हफ्ते पखवारे..... और मेरी इस देह में इतनी प्यास है कि मछली सी तड़पती हूँ।''[3]

मित्रो दूसरे मर्दों से सम्बन्ध बनाने में भी गुरेज नहीं करती। वह अपने मायके जाती है। उसे पता है कि उसकी मां भी अनेक मर्दों के साथ वासना का खेल खेलती है। मां बेटी के बीच इस बारे में खुलकर बाते होती हैं जो भारतीय परम्परा के अनुसार अस्वाभाविक भी लगती हैं किन्तु लेखिका मानो सेक्स सम्बन्धी हर परम्परा या मान्यता की धज्जियां उड़ा देना चाहती है। मां, बेटी के लिये एक नये पुरूष की व्यवस्था करती है जिसे मित्रो सहजता से स्वीकार भी लेती है पर मां की नीयत दामाद पर देखकर वह आम भारतीय स्त्री की भांति अपने पति को पर स्त्री से सम्बन्ध बनाते नहीं देख सकती। ऐसी भावना प्राय: आमतौर पर पुरूषों में पाई जाती है। लेखिका शायद यही प्रमाणित करना चाहती है कि ऐसी पुरूषोचित भावना स्त्री में भी होती है। वैसे मित्रो को अपनी वासनात्मक कमजोरी का ज्ञान है, वह इसे नैतिक नहीं समझती। वह एक पूर्ण नारी है, जिसमें सद्गुणों की कमी नहीं है। उसका विवेक ही उसे अन्त में किसी गलत मार्ग में जाने से रोकता है। ''मास मज्जा से बनी नारी, जिसमें स्नेह भी है, ममता भी, मां की हौस भी और एक अविरल बहती वासना सरिता भी।''[4]

यहां काम सम्बन्धों को लेखिका में जीवन की एक अनिवार्य प्रक्रिया के रूप में चिन्हित करने का प्रयास किया है। मित्रो मरजानी परम्परागत स्त्री होने के बावजूद आधुनिक स्त्री की भांति व्यवहार करती दृष्टिगत होती है; इसीलिये वह विवादास्पद भी है। विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार,''ऐसा सजीव पात्र, ऐसा सदेह पात्र किसी परिवार को तोड़ देता पति को पागल बना देता, हत्या हो जाती लेकिन ऐसा नहीं हुआ।''[5]

सम्पूर्ण उपन्यास एक ही समस्या पर केन्द्रित है। समाज की अन्य अनिवार्य समस्यायें अनदेखी की गई है, लेखिका शायद इसी (सेक्स) समस्या को ही केन्द्र में रखना चाहती है, ताकि भारतीय पुरूष समाज की आंखे खुल सकें और समाज पुरूष के साथ-साथ स्त्री देह की इस अनिवार्य आवश्यकता को भी समझने का प्रयास करे।

स्वातंत्र्योत्तर नारीवादी उपन्यासकारों (लेखिकाओं) में स्त्री की अलग पहचान बनाने की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। मन्नू भण्डारी की भांति कृष्णा सोवती का रचनासंसार भले ही उतना व्यापक या बहुआयामी न हो, किन्तु नारी मन का मनोविश्लेषण, अपनी अस्मिता तथा स्त्री की दबी हुई या दबाई गई प्रवृत्तियों को अभिव्यक्ति देने का जो प्रयास कृष्णा सोवती ने किया है उसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है। उनके उपन्यासों के नारी पात्र अपने खुलेपन एवं भावाभिव्यक्ति के लिये तथा पलायन के विरूद्ध संघर्षरत नारी के साहसिक जीवन का दस्तावेज प्रस्तुत करते हैं। ''कृष्णा सोवती का बहुचर्चित व्यक्तित्व उनके लेखन के खुलेपन और भावाभिव्यक्ति का प्रतिफलन है। अपनी स्पष्टवादिता से वह बोल्ड कही जाने लगीं। नारी का चित्रण करने वाले पुरूष समाज के लिये कृष्णा सोवती नारी का नया चित्र लेकर उपस्थित हुई हैं।''[6]

स्त्री के चरित्र-चित्रण का कॉपीराइट भारतीय समाज में पुरूषों के पास रहा है। इस पर स्त्री को अपनी राय देने की परम्परा नहीं रही। इस पुरूष जनित परम्परा के विरूद्ध स्त्री के साथ-साथ पुरूष के बारे में स्त्री की राय आकांक्षा, संवेदना एवं बराबरी के व्यवहार की पहल जब लेखिका करती है, तो यह अपने समय का नयापन जो यथार्थ से जुड़ा अपने बौद्धिक आयामों को चिन्हित करता है, तो हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में बुद्धिजीवी पुरूषों को अचम्भे के साथ-साथ दु:साहस प्रतीत होती है किन्तु एक पुरूष की भांति नारी मन की पुरूष कामना एक ऐसा वैज्ञानिक सत्य है जिसे झुठलाया नहीं जा सकता। उनके उपन्यास 'सूरजमुखी अंधेरे में' की रत्ती, इस यथार्थ को अश्लीलता का आरोप सहकर भी जीती है। पाशो, मित्रो, राधिका आदि उनके उपन्यासों के नारी पात्र कहीं भी आदर्शों का बोझ ढोते हुये दृष्टिगत नहीं होते तथा नारी को अपने जीवन का मार्ग स्वयं चुनने की प्रेरणा देते हैं। कृष्णा सोवती के नारी-पात्र पूरे आत्मविश्वास के साथ।

'सूरजमुखी अंधेरे में' की नायिका रत्ती नारी जीवन का एक नया पहलू नारी मन का जटिल विश्लेषण एवं नये साहस का प्रतीक बनकर नारी-जीवन के कुछ अनुछवे आयामों को उद्घाटित करती है। आधुनिक परिवेश में रहने वाली इस युवती के किशोर वय को बलात्कार के द्वारा कुंठित कर दिया गया है।

संदेह एवं लांछना के बीच मानसिक द्वन्द्वों ने उसे अहिल्या (चट्टान) बना दिया है, किन्तु यह चट्टान उसकी भीतरी पर्त है। बाहरी तौर पर वह अदम्य साहस के साथ पुरूष वर्ग से प्रतिशोध लेती दिखाई देती है। उसके जीवन में एक स्थिति ऐसी भी आती है जब उसके सभी पुरूष साथी उसे पाना चाहते हैं, भोगना चाहते हैं किन्तु कोई भी उसके अन्तर्मन में झांकने का प्रयास नहीं करता। बकौल जनकवि श्रमिक- 'मेरी बरवादियों की एक चर्चा है शहर भर में / मगर इस जिंदगी में झांकने कोई नहीं आया।'

इस उपन्यास के आवरण पृष्ठ पर लेखिका स्वयं लिखती है ''रेशम सी नरम, ठंडी मगर गरम शैली में प्रस्तुत इस उपन्यास में एक ऐसी लड़की की कहानी है जिसके फटे बचपन ने उसके सहज भोलेपन को असमय चाक कर दिया और उसके तन-मन के गिर्द की दुश्मनी की कटली बाड़ दी। अन्दर और बाहर की दोहरी दुश्मनी में जकड़ी रत्ती की लड़ाई, मानवीय मन की नितान्त उलझी हुई चाहत और जीवट संघर्ष का दस्तावेज है।''[7]

इस उपन्यास में नारी मन की उस ग्रंथी को सुलझाने की चेष्टा की गई है, जो पुरूष प्रधान समाज में नारी को प्राय: बलात्कार के रूप में प्राप्त होती है। पुरूषों से खेलते हुये वह अपनी घृणा को तृप्ति प्रदान करती है। नारी मन का यह नया मनोविज्ञान एक नारी के द्वारा विश्लेषित किया गया है। यही इस उपन्यास की विशेषता है। सेक्स या प्रेम में निराश पुरूषों की मनोदशा के विरूद्ध यह नारी मन की एक ऐसी उलझन है जिसे इस उपन्यास में भी पूर्ण रूप से नहीं सुलझाया जा सका। फिर भी एक बलात्कृत नारी के मृतप्राय संवेगों के बीच अंधेरे में एक सूरजमुखी का फूल खिलता है। यह फूल प्रेम के साथ सेक्स का समन्वय भी हो सकता है और एक कुंठित जीवन का यथार्थ भी। मुझे लगता है कि लेखिका इस कथानक के द्वारा यह प्रमाणित करना चाहती है कि एक स्वाभाविक बराबरी के प्रेमपूर्ण व्यवहार में सेक्स फेवीकोल का काम करता है जो अनाधिकृत रूप से प्राप्त किये जाने पर एक स्त्री को बर्फ की चट्टान बना सकता है। नारी मन के दबे हुये जज्बातों को जिस कलात्मक यथार्थपूर्ण ढंग से विश्लेषित किया गया है उसके लिये लेखिका की प्रशंसा की जानी चाहिये।

'जिंदगीनामा'(1979) उपन्यास में पंजाबी जीवन को यथार्थपरक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। कृष्णा सोवती के इस उपन्यास को किसी खास राजनैतिक दृष्टि से देखना इसके साथ अन्याय होगा। हाँ ! इसमें अंग्रेजों की ''फूट डालो और शासन करो'' की साम्प्रदायिक नीति को बेनकाब अवश्य किया गया है। इसमें बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक जीवन को जिस सहजता से उकेरा गया है उसे स्वाभाविक जीवन का स्केच कहा जा सकता है। इस उपन्यास को एकांगी नहीं कहा जा सकता क्योंकि सामुहिता अर्थात् जन-जन का जीवन पूरे भौगोलिक परिवेश के साथ मौजूद है। नदी, खेत लहलहाती फसलें 'जिन्दगीनामा' की जिन्दा तस्वीर है। जो किसी काव्य शैली की याद ताजा करता है। पंजाब की ग्रामीण जीवन शैली को पूरी कलात्मकता के साथ वर्णित करते हुये इस उपन्यास में पंजाबी गांव अपनी नूतन और पुरातन परम्परा के साथ उपस्थित है। लेखिका स्वयं लिखती है, ''जिंदगीनामा आम लोगों का उपन्यास है जो सिर्फ उपन्यासों में ही नहीं उपजते, जिन्हें केवल बौद्धिक रूमानियत से नहीं उभारते। ये लोग खुद अपनी हैसियत व औकात से आपके सामने डटे रहते हैं और बिना किसी चकाचौंध के जिन्दगी का जीवट से सामना करते हैं।''[8]

यह उपन्यास अपने असम्बद्ध पात्रों के द्वारा अपने गांव का सम्पूर्ण इतिहास रचता है और पंजाबी संस्कृति की स्वाभाविक यथार्थपरक तस्वीर पेश करता है।

अंत में

कृष्णा सोवती के रचना संसार को इस छोटे से लेख में सम्पूर्णता में समाहित करना सम्भव नहीं है। दो शब्दों में यही कहा जा सकता है कि नारी जीवन को स्वतंत्र रूप से पूर्णता कैसे प्रदान की जाये, इस प्रश्न को वह बार-बार उठाती है। वह महसूस करती है कि स्त्री को पूर्णता में जीने का हक हासिल नहीं है। इसे हासिल करने का संघर्ष उनकी रचनाधर्मिता का आधार बिन्दु है। वह नारी स्वतंत्रता के नये मानदण्डों को स्पष्ट करती हुई स्त्री अस्मिता को नये आयाम प्रदान करती है। स्वतंत्रता, समानता और आत्मनिर्भरता की प्रेरणा प्रदान करने वाला उनका कालजयी कृतित्व, दाम्पत्य जीवन की सहजता को खण्डित नहीं करता बल्कि उसे एक नये धरातल पर जीने की प्रेरणा देता है, जहाँ स्त्री-पुरूष वर्ग शत्रु न होकर एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं।

भाषा एवं शैली की रोचकता कई जगहों पर गद्यकाव्य की संवेदनशीलता का परिचय देते हुये उनकी सिद्धहस्त कलम का जादुई यथार्थ बन जाता है।

संदर्भ

[1] डॉ0 अनीता -कृष्णा सोवती के कथा साहित्य में स्त्री का स्वरूप, जवाहर पुस्तकालय मथुरा, सं0 2006, पृष्ठ संख्या 9 भूमिका

[2] कृष्णा सोवती -सारिका, 16/1/1982

[3] कृष्णा सोवती -मित्रो मरजानी, पृष्ठ संख्या 20

[4] कृष्णा सोवती -मित्रो मरजानी, आवरण पृष्ठ

[5] विश्वनाथ त्रिपाठी -पूर्वग्रह मई-जून 1980, पृष्ठ संख्या 280

[6] डॉ0 अनीता -कृष्णा सोवती के कथा साहित्य में स्त्री का स्वरूप, जवाहर पुस्तकालय मथुरा, सं0 2006, पृष्ठ संख्या 45

[7] कृष्णा सोवती -सूरतमुखी अंधेरे में, आवरण पृष्ठ

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,39-46**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 10 फरवरी 2014

इक्कीसवीं सदी के महत्वपूर्ण बिन्दुओं से रू-ब-रू करवाती किरण अग्रवाल

डॉ. राधा वर्मा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *इक्कीसवीं सदी के महत्वपूर्ण बिन्दुओं से रू-ब-रू करवाती किरण अग्रवाल* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *राधा वर्मा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

'रुकावट के लिए खेद है' कविता पुस्तक में किरण अग्रवाल ने जीवन व जगत के विविध विषयों को कविता का विषय बनाकर बहुआयामी कविताओं का ताना-बाना बुना है। कवयित्री का मानना है कि पारिवारिक संबंध सौहार्द्रपूर्ण तभी तक बने रह सकते हैं, जब तक रिश्तों में गरमाहट बनी रहे। आज इनसान की संकुचित मानसिकता के कारण जहाँ रिश्तों की गरमाहट खत्म हुई है, वहीं पर्यावरण के साथ भी खिलवाड़ हुआ है। इसके साथ ही धर्मान्धता तथा स्वार्थ के कारण हो रहे युद्ध से, दुनिया तबाह हो रही है। यह देख कवयित्री ने नफरत की दीवारों को गिराने का संदेश देते यह बताने का प्रयास किया है कि कोई भी मज़हब बैर करना नहीं सिखाता। कवयित्री जीवन में सच को अपनाने पर बल देते हुए शांति चाहती है। काम के बोझ तले दबी ममतामयी माँ, पतिव्रता धर्म निभाती पत्नी, कलाई पर राखी बाँध भाई से रक्षा की गुहार लगाती बहन, पराये धन के रूप में पाली-पोसी गयी बेटी यानी स्त्री जीवन की व्यथा को चित्रित करते हुए, उसे जागृत होते भी दिखाया गया है।

पारिवारिक संबंधों को सौहार्द्रपूर्ण बनाने में रिश्तों की गरमाहट अहम् भूमिका निभाती है। मानव समाज की प्राचीनतम एवं महत्त्वपूर्ण इकाई परिवार के क्रमशः विकास के साथ ही संबंधों का विकास होता है। मधुर एवं सुखद संबंध भगवान् की देन माने जाते हैं। संबंधों की घनिष्ठता, परस्पर सहयोग व प्यार की बुनियाद पर टिकी होती है। मनुष्य परिवार में अकेला नहीं, परिवार में और भी सदस्य होते हैं, जिनके आधार पर परिवार का गठन होता है। परिवार में माता-पिता-संतान का रिश्ता बहुत ही प्रगाढ़ होता है। रिश्तों की यह प्रगाढ़ता किरण अग्रवाल की कविताओं में स्पष्टता से देखी जा सकती है। किरण अग्रवाल माँ को याद कर 'माँ के नाम' कविता में अपने रोम-रोम में उसकी उपस्थिति को महसूसती हुई कहती है :

* सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय [संजौली] शिमला (हि.प्र.) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

माँ! तुम जंगल की भाँति मेरे भीतर हो/ मेरे बाहर हो/ मेरे चारों तरफ हो/ जंगल से होकर बहती हवा हो तुम/ बहती हो मेरी धमनियों में, शिराओं में/ बाँस के वनों में गूँजता संगीत हो तुम/ बजती हो मेरे प्राणों के साज पर।[1]

पिता के न रहने पर उनकी याद ताजा हो आने पर 'पिता के नाम' कविता की ये पंक्तियाँ रिश्तों की गरमाहट को चित्रित करती हैं :

सामने पहाड़ी पर फैले/ चीड़ के जंगलों को चीरकर/ ठहर जाती हैं मेरे चेहरे पर हर शाम/ डूबते सूरज की दो किरणें/ ये किरणें तुम्हारे दो हाथ हैं पिता/ जिनसे तुम मेरे चेहरे को छूते हो/ और तुमसे अनगिनत मील दूर/ अपने भीतर महसूसती हूँ मैं/ तुम्हारे स्नेह की गरमाहट।[2]

माता-पिता के सान्निध्य में बच्चे हमेशा सुकून भरा जीवन जीते हैं, उनके आशीर्वाद का रक्षा-कवच हमेशा अपने साथ पाते हैं, उनके न रहने पर उनकी कमी महसूस कर, उन्हें याद करना रिश्तों की गरमाहट को सामने लाता है क्योंकि याद किसी को तभी किया जाता है, जब किसी से अत्यधिक लगाव हो।

समय में आये बदलाव के फलस्वरूप आज रिश्तों में जो बदलाव झलक रहा है, इसे भी कवयित्री ने 'मौसम के शहर में बदलाव' कविता में बखूबी चित्रित किया है। आत्मीयता और रिश्तों की गरमाहट को खत्म होते देख 'मौसम के शहर में बदलाव' कविता में दुःख के साथ यह कहती नजर आती है :

मौसम के शहर में जबरदस्त बदलाव आया था/ मौसम विभाग के सारे प्रिडिक्शंस फ़ेल हो गये थे/ मौसम के शहर में सन्नाटा था/ वे सड़कें जो जोड़ती थी एक घर को दूसरे घर से/ एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से/ एक दिल को दूसरे दिल से/ और एक धड़कन को दूसरी धड़कन से/ बर्फ से ढँकी थीं।[3]

इस स्थिति से निपटने के लिए आत्मीयता और अपनेपन को बचाना बेहद जरूरी है, क्योंकि इस के न होने की वजह से इनसान को ताउम्र अकेलेपन की पीड़ा को भोगना पड़ता है।

अकेलेपन की पीड़ा से जूझते आदमी को 'एक अकेला आदमी' कविता की इन पंक्तियों में देख सकते हैं :

वह एक विशालकाय घर था/ जैसे कि एक पूरी दुनिया/ बहुत सारे लोग रहते थे वहाँ/ अलग-अलग घरों में/ घर के अन्दर घर/ घर के अन्दर घर/ घर के अन्दर घर/ हर घर के भीतर कई कमरे थे/ फिर कमरों के भीतर कमरे/ कमरों के भीतर कमरे/ कमरों के भीतर कमरे/ सबसे भीतरी कमरे में रहता था एक अकेला आदमी/ एक बेचैन आदमी/ हँसते थे घर में सब साथ-साथ/ खाते थे-पीते थे-उठते थे-बैठते थे/ टी0वी0 देखते थे और जमकर प्रेम करते थे/ फिर भी अकेला था आदमी।[4]

इस अकेलेपन का कारण इन्सान में आपसी सामंजस्य का खत्म होना है। इसी अकेलेपन से जूझती स्त्री को इनकी 'जेल में' कविता में भी देख सकते हैं :

मैं जेल से बाहर हूँ/ एक सम्मानित 'घर' में/ और घर भरा-पूरा है वस्तुओं और रिश्तों की गन्ध से/ फिर भी अकेली हूँ मैं/ जैसे हवा किसी खण्डहर में।[5]

इस घोर व्यवसायिकता के युग में संबंध अपना अर्थ खोते जा रहे हैं। आज के युग में कोई ऐसा संबंध नहीं बचा है, जिसमें कड़वाहट न आई हो। इस कड़वाहट के पीछे निश्चित रूप से स्वार्थ-भावना का होना है। यह स्वार्थ-भावना सबके लिए घातक है, विनाशकारी है, इससे बचा जाना नितांत आवश्यक है। समय की रफ़्तार के साथ सब कुछ बदल रहा है। ऐसे में कवयित्री का 'शिकायत' कविता में यह कहना गलत नहीं है :

उन्हें शिकायत थी/ कि उनका आसमान उनसे छीन लिया गया/ अब उनके पास उनका आसमान है/ लेकिन उन्हें शिकायत है/ कि किसी और के पास आसमान क्यों हैं ?[6]

राजनीति के संदर्भ में देखा जाए तो आज राजनेताओं का एकमात्र लक्ष्य अपने स्वहित की पूर्ति करना है। नेता चुनाव के समय लुभावने वायदे कर अपना काम निकलता देख जनता की परवाह नहीं करते। इसे कवयित्री ने 'सत्ता' कविता में बखूबी चित्रित किया है। ''उन्होंने कहा/ सत्ता हमारे हाथ में आने दो/ हम तुम्हारी जिन्दगी बदल देंगे/ एक दिन सत्ता उन के हाथ में थी/ उन्होंने उनकी जिन्दगी दोजख बना दी।''[7]

सत्ता-प्राप्ति, वर्चस्व स्थापना और आर्थिक दौड़ में आगे बढ़ने की होड़ आज जीवन में बढ़ी है और इन्हें हासिल करने के लिए इनसान स्वार्थी होता जा रहा है और अमानवीय तरीकों का प्रयोग कर रहा है। गुलामी की बेड़ियों से लंबे समय बाद आज़ादी तो जरूर मिली, परन्तु आम आदमी की स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ा। जो भी व्यवस्था के उच्च पद पर आसीन होता वह उस पद का लाभ प्राप्त कर देश में खुशहाली लाने की जगह बदहाली ही पैदा करता दिखाई देता है। अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए इनसान किसी भी सीमा तक गिरने में हिचकिचाहट नहीं करता। यह गंभीर चिन्ता का विषय है और देश के सर्वांगीण विकास में सबसे बड़ी बाधा है। धर्म के संदर्भ में बात करें, तो स्वार्थ से भरे हुए लोगों को इस का पूर्ण ज्ञान तक नहीं है कि धर्म क्या होता है ? अधर्म क्या है ? ये मात्र धर्म के नाम पर दिखावा करते हैं, धर्म से इन का दूर-दूर तक कोई वास्ता नहीं होता है। कोई भी धर्म लड़ना-झगड़ना नहीं सिखाता। यह सब धर्म का सही अर्थ न समझ पाने के कारण हो रहा है, इसलिए आज जरूरत है इस बात को समझने की और उसे अपने जीवन में अपनाने की। कवयित्री ने 'दीवार-ए-शब' कविता में यही कहने का प्रयास किया है कि किसी भी मज़हब में पैदा होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। सभी की शिराओं और धमनियों में इनसान का ही रक्त बहता है, सब के शरीर में नाक, कान, मुँह, आँख भी बराबर ही होते हैं, किसी में कम और ज़्यादा नहीं होते। फिर एक-दूसरे के सीने में खंजर उतारने को क्यों तैयार रहते हो ? क्यों जिंदा जलाने को तैयार रहते हो ? ऐसा कर अमन-चैन क्यों खत्म कर रहे हो ? धर्मान्धता के कारण फैली नफरत की दीवारों को गिराने की ओर इशारा कर सद्भावना फैलाने का संदेश देते कवयित्री 'दीवार-ए-शब' कविता में स्पष्ट कहती है :

इस दीवार-ए-शब को तोड़ दो/ महफूज़ नहीं है कोई भी इसके साये में/ यह जीवन की रवानगी हमसे छीन लेगी/ यह हमारी निगाहों का पानी हमसे छीन लेगी/ यह हमारे लफ़्ज़ों की सच्चाई को निगल जायेगी/ यह हमारे जज्बातों की जमीन को ही जला डालेगी/ यह हमें बहुत कमजोर कर देगी/ बहुत-बहुत कमजोरें।[8]

भगवान और मजहब किसी को नफरत करना नहीं सिखाता। भगवान को सभी धर्मों के लोग मानते हैं, वह एक है; पर सभी के मानने के तरीके अलग-अलग हैं। रास्ते भले ही अलग हैं, पर सबकी मंजिल एक है, फिर यह मंदिर-मस्ज़िद का मुद्दा उठाकर खून-खराबा सही नहीं है। 'खुदा' कविता में इस बात को स्पष्ट करते कवयित्री कहती है :

जब वे तोड़ रहे थे/ एक के बाद दूसरे मंदिर/ बाबरी मस्ज़िद गिरा दिये जाने के विरोध में/ खुदा अकेला एक पुलिया पर बैठा/ बीड़ी पर बीड़ी फूँक रहा था/ और अपनी बेबसी पर चुपचाप रो रहा था/ किसी को परवाह नहीं थी खुदा की/ या उसकी खुदाई की/ उन्हें फिक्र थी तो बस/ अपनी नफरतों की लड़ाई की।[9]

इस लड़ाई के कारण दुनिया की तबाही को 'युद्ध' कविता में शब्दबद्ध किया है :

कहते हैं ताली कभी/ एक हाथ से नहीं बजती/ जैसे युद्ध/ लेकिन बजती है ताली/ एक हाथ से भी कभी-कभी/ विवश कर देता है एक हाथ दूसरे हाथ को/ टकराने के लिए/ जैसे आघात अक्सर/ एक अकेला ही करता है पहले/ दूसरा तो अपने बचाव के लिए/ उलझता है उससे/ युद्ध एक हथेली है/ लेटी हुई महत्त्वाकांक्षा की धरती पर/ जब फुफकारती है फन उठाकर/ नीली पड़ जाती है दुनिया।[10]

जिनकी वजह से दुनिया नीली पड़ जाती है यानी तबाह हो जाती है। ऐसे इनसानियत को रौंदने वाले दरिंदों से रू-ब-रू करवाते कवयित्री को 'जश्न' कविता में देख सकते हैं :

जब मैं अन्दर घुसी/ उत्सव का-सा आलम था वहाँ/ जश्न मना रहे थे मौत का कारोबार करने वाले/ उन्हें जबरदस्त मुनाफा हुआ था/ जबकि सारा शहर अँधेरे में डूबा था/ वहाँ रोशनियाँ जगमगा रही थीं/ तबाही मचा-मचाकर शान्त हो चुके थे मशीनगनें, टैंक और बमवर्षक यन्त्र/ बस घायलों की कराह शेष थी/ जो जहरीले धुएँ के बीच रास्ता ढूँढ रही थी।[11]

यह सब देख कर इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि शांति के द्वारा न केवल मानव का मानव से रिश्ता मजबूत होता है बल्कि राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में भी मधुरता लायी जा सकती है। सभी धर्म भी यही चाहते हैं कि इनसान सच को अपनाये और शांति के मार्ग पर चले और अपना जीवन खुशहाल बनाये। शांति जीवन में तभी आ सकती है जब इनसान जीवन में सच को अपनाये। 'सच' कविता में सच को जीवन में अपनाने का आह्वान करते हुए कवयित्री कहती है :

सच उजागर भी हो जाए/ और छुपा भी रहे/ आत्मा झूठ के बोझ तले दबे भी नहीं/ इसका सबसे अच्छा उपाय है/ निडर होकर सच बोल देना।[12]

सच पर बल देते हुए, सकारात्मक और अच्छी सोच को आगे बढ़ाते हुए कवयित्री इनसान के स्वार्थ के कारण उपजी धर्मान्धता से हो रहे युद्ध से तबाही को देखते हुए शांति का सपना संजोये है, जिसे वह आँखों से ओझल नहीं होने देना चाहती। 'सपना' कविता में वह यह स्वीकारती है :

मैं एक सपने का पीछा करती हूँ/ और सपने के पीछे-पीछे/ चली आयी हूँ इस कमरे तक/ नहीं है इस कमरे में कोई घड़ी या कैलेण्डर या टेलीफोन/ कोई पत्र या पत्रिका, टेलीविजन, ट्रांजिस्टर/ कम्प्यूटर, म्यूजिक सिस्टम या फर्नीचर भी/ सिर्फ एक सफेद रोशनी का अन्तरंग फैलाव है/ अनन्त में विलीन होता हुआ/ मुझे तोड़ देनी हैं सारी दीवारें/ मुझे उस सपने को आँखों से ओझल नहीं होने देना।[13]

आज एक ज्वलन्त समस्या जो इनसान के आगे मुँह खोलकर खड़ी है वह है- पर्यावरण प्रदूषण। इस गंभीर समस्या को देखते हुए अपने परिवेश के प्रति जागरूक किरण अग्रवाल इसे अनदेखा कैसे कर सकती थी। मनुष्य और प्रकृति का घनिष्ठ संबंध है। मनुष्य का जीवन प्रकृति के आंगन में पुष्पित, पल्लवित और विसर्जित होता है। आज की सबसे ज्वलन्त समस्या पर्यावरण प्रदूषण है। जो मनुष्य के द्वारा किये जाने वाले प्रकृति के विनाश के कारण हुआ है। 'एक दिन घने जंगलों के बीच' कविता में पर्यावरण प्रदूषण की ओर इशारा कर आज की स्थिति से अवगत करवाते कवयित्री कहती है :

एक दिन घने जंगलों के बीच/ थोड़ी-सी जमीन साफ कर/ बनाया गया था यह छोटा-सा सीमेंट और कंकरीट का आशियाना/ आज वह आशियाना/ जंगलों की तरह फैल गया है/ और जंगल सिकुड़ते जा रहे हैं/ आज वह आशियाना/ बदल चुका है एक बीहड़ जंगल में/ और उस बीहड़ जंगल के बीच गमलों और फूलदानों में/ रचा है आदमी ने एक बोनसाई जंगल।[14]

इस तरह चिंतित कवयित्री को 'फूल और अनुकूलता' कविता में भी देख सकते हैं :

जमीन का वह टुकड़ा रंग-बिरंगे फूलों के आगोश में झूमता था/....एक दिन देखा वहाँ एक बहुमंजिली इमारत बन रही है/ फिर वह इमारत बन कर पूरी भी हो गयी/ फिर उस इमारत में रहने आ गये लोग/ किसी ने नहीं सुनी उस जमीन के टुकड़े की चीख तक/ जो सहायता के लिए गुहार कर रहा था-/ मेरे इन फूलों को बचाओ/ इन्हें इस इमारत के नीचे से निकालो।[15]

इन्हें न बचाने का एक ही कारण है पर्यावरण के प्रति प्रेम का अभाव। तभी तो कवयित्री ने ऐसे लोगों के बारे में यह कहा है, ''जिंदा फूलों की बनिस्बत मुर्दा फूल, उनके ज्यादा अनुकूल थे/ वे नहीं माँगते थे उनसे मिट्टी, पानी, धूप और हवा।''[16]

इस हालत को देखते यानी पर्यावरण के प्रति संवेदनहीनता को देख 'एक नन्हा पौधा' कविता में पर्यावरण को बचाये रखने का आह्वान कर कवयित्री कहती है :

मैंने एक नन्हा पौधा रोपा था बीस साल पहले/ आज वह एक फलता-फूलता वृक्ष है/ चलो ! हम सब मिलकर/ एक-एक पौधा रोपें आज/ कल वे पौधे/ हरे-भरे जंगल में बदल जायेंगे।[17]

सच में, पर्यावरण को अगर बचाये रखना है तो सभी को इस दिशा में प्रयास करना होगा। संपूर्ण विश्व की भूमि, वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं को संरक्षण प्रदान करना वर्तमान तथा भावी पीढ़ी के लिए आवश्यक है। इनकी कविताएँ प्रकृति की ओर लौटने के लिए प्रेरित करती हैं। इन्हें मालूम है कि प्रकृति विरुद्ध कार्यों का संचालन प्राकृतिक व्यवस्था को तो नष्ट करता ही है, मानवीय ध्वंस का आधार भी तैयार करता है। इसलिए संपूर्ण विश्व की भलाई के लिए इसका संरक्षण अति आवश्यक है। ये कविताएँ असुरक्षित भविष्य से बचाव के लिए पर्यावरण संरक्षण का अलख जगाने का संदेश दे रही है, ताकि पृथ्वी पर जीवन का आधार बचा रहे।

आज स्त्री-विमर्श साहित्य (गद्य तथा पद्य) का केन्द्र बना हुआ है। इसके केन्द्र में बनने की वजह क्या है ? आखिर स्त्री-विमर्श की आवश्यकता क्यों महसूस हुई ? इसका उत्तर राकेश कुमार के इस वक्तव्य से मिल जाता है :

स्त्री-विमर्श में उठने वाले सवाल महज स्त्रियों से जुड़े ही नहीं हैं, अपितु उनसे हमें पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे मापदण्डों, पितृक मूल्यों, लिंग भेद की राजनीति और स्त्री उत्पीड़न के अन्तर्निहित कारणों को समझने की भी गहरी दृष्टि प्राप्त होती है।[18]

इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता में स्त्री-विमर्श सम्बन्धी कविताओं को पढ़ने पर ज्ञात होता है कि उसके साथ कैसा व्यवहार हो रहा है और वह अत्याचार, अन्याय को चुपचाप कैसे सहन कर रही हैं। जुल्म के खिलाफ आवाज उठाने के हिम्मत उसमें नहीं दिखती, जिसकी वजह से शोषण तन्त्र मजबूत होता जा रहा है। कवयित्री ने स्त्री पर होते आ रहे दमन

को अपनी आँखों से देखते हुए स्पष्ट किया है कि अभी भी वह बद से बदत्तर जिन्दगी जी रही है और निरन्तर उपेक्षा की शिकार हो रही है, जिसके लिए हमारा पितृसत्तात्मक पुरुष प्रधान समाज जिम्मेवार है। कवयित्री ने इसकी जिन्दगी से सीधा साक्षात्कार कर उसको परिचित करवाने की कोशिश की है। स्त्री विमर्श के विविध पहलुओं का जो विवेचन कवयित्री ने किया है, वह पाठक के लिए खास तौर से स्त्री के लिए नयी दिशा प्रदान करता है। इधर किरण अग्रवाल की स्त्री विमर्श को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली उन कविताओं का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है, जो गवाह है स्त्री संसार के उत्पीड़न भरी दुनिया की। इसमें बदलाव तभी सम्भव है, जब वह जागृत होगी। किरण अग्रवाल की 'गाँठे', 'यह भी उर्मिला है, 'प्रहार' कविताएँ स्त्री संसार की उत्पीड़न भरी हुई दुनिया को प्रस्तुत करती है। 'गाँठे' कविता में एक ऐसी लड़की की उत्पीड़न भरी हुई दास्ता है, जो गणित की प्राबलम्स हल करने में प्रथम पुरस्कार का श्रेय देने गुरु के घर ही पहुँच जाती है। उसकी खुशी उस समय चूर-चूर हो जाती है, जब गुरु घर में अकेले का फायदा उठाकर उसके साथ दुराचार करता है। भक्त कवियों ने गुरु को भगवान से भी ऊँचा स्थान दिया है; परन्तु आज ऐसे समय में जब शिष्या गुरु के घर में भी सुरक्षित नहीं है, उस गुरु-शिष्य की परम्परा और उनके पवित्र रिश्ते पर भी सवालिया निशान खड़ा करती है और साथ ही पुरुषों के चारित्रिक पतन की ओर भी इशारा करती है। दुराचार की शिकार शिष्या की स्थिति का चित्रण इन पंक्तियों में करते कवयित्री कहती है :

अनभिज्ञ थी जो चल रहा था सामने वाले के अन्दर/ उन्होंने सहसा मसल दिए थे/ उसके खिलते हुए उरोज आगे बढ़कर/ जैसे चील झपटे चिड़िया के बच्चों पर/ वह हतप्रभ थी।[19]

यह हादसा घटित होने पर उसके अन्दर विकराल लहरें उसी तरह पैदा हो गई, जिस तरह शांत नदी एकदम भयभीत रूप धारण कर ले और उस समय वह क्या सोचती है ? क्या करती है ? उसे इन पंक्तियों में देखा जा सकता है :

एक साधारण सा गणित/ उसकी समझ में नहीं आया/ हँसी थी वह/ जला दी थी उसने गणित की सारी किताबें उस दिन/ तोड़ दिए थे सारे मैडल/ बदल गया था सहसा अर्थ जीवन का।[20]

जो लड़की गुरु के घर में भी सुरक्षित नहीं है, वह रास्ते में कैसे सुरक्षित हो सकती है ? यानी हर जगह यौन-उत्पीड़न को झेल रही है। हॉस्टल से अपने गाँव लौटते वक्त का चित्रण इन पंक्तियों में करती हुई कवयित्री कहती है :

घुसना चाहती थी भागी हुई भीड़ में/ सैकेण्ड क्लास के एक कप्पार्टमेंट में/ कि कई हाथ आए/ और नोच गए उसके उन्नत उरोज/ वह खिसक आई पीछे/ छूट गई थी ट्रेन।[21]

उस दिन जो उसने महसूस किया उसे अपने डायरी में इन शब्दों में अंकित किया, 'आज मैंने आदमी की खाल ओढ़े जानवरों को देखा।'[22] घर, सड़क, सिनेमाहाल में भी उसका इसी तरह शोषण होता रहा है और वह चुपचाप सहन करती रही, क्योंकि, "यह एक आम बात थी/ जिसे छुपाकर रखा जाता था/ यह सब उसकी माँ ने उसे समझाया था/ और वह छुपाकर रखती गई हर गाँठ।''[23] माँ के ऐसा समझाने पर जाहिर है कि उसकी माँ भी इस स्थिति से गुजरी है। वह भी बेटी की ही तरह यौन-शोषण की शिकार होती रही और इस बात को सबसे छुपाती रही, ताकि बदनामी न हो। शोषण को झेलते-झेलते आज वह इतनी दुःखी हो चुकी थी कि ब्रेस्ट कैंसर होने पर उसकी आँखों में आँसू तक नहीं थे, बल्कि, ''एक क्रूर हँसी थी उसकी आँखों में/ कुछ मेलिगनेंट गाँठें थी, उसके नारीत्व में गुँथी हुई/ जो निकल गई थी/ अब वह सुरक्षित थी।''[24]

इस कविता में यौन-शोषण से दुःखी लड़की का चित्रण किया गया है कि वह अनेक जगह पर किस तरह शोषण का शिकार हो रही है। शोषण को झेलते-झेलते आज वह इस स्थिति में पहुँच चुकी है कि अपना नारीत्व छिन जाने पर भी दुःखी नहीं होती। यानी नारीत्व छिन जाने से वह उतना दुःखी नहीं होती, जितना दुःखी यौन-शोषण को झेलते हुए होती है। इसी से ही उसके दुःख का अन्दाजा लगाया जा सकता है। इसी तरह शोषण की शिकार स्त्री को इनकी कविता 'यह भी उर्मिला है' में देख सकते हैं। उपेक्षित स्त्री की तुलना कवयित्री उर्मिला से करती हुई कहती है कि जैसे लक्ष्मण चौदह बरस का बनवास झेलने के लिए अपनी पत्नी उर्मिला को महल में छोड़ गए थे, उसी तरह यह भी उर्मिला की तरह उपेक्षित है, जिसे इसका लक्ष्मण छोड़ गया है और साल में एक बार आता है, "अपना पति धर्म निभाने/ और उसके आँचल में/

एक अदद बच्चा डाल जाता है।''[25] उसकी दयनीय स्थिति देखिये कि पहले वह लोगों के घरों में झूठे बरतन माँजती थी, लेकिन इससे गुजारा न होने पर वह अब ठेकेदार के पास काम करती है :

वह तोड़ती है पत्थर/ ढोती है सीमेंट की बोरियाँ/ फर्श बनाती है/ ढलाई करती है छत की/ और वह सब कुछ/ जो ठेकेदार कहता है।[26]

कविता की इन पंक्तियों से जाहिर है कि वह मजबूरी में सब कुछ-चाहे वह उचित हो या अनुचित, नैतिक-अनैतिक, सभी कुछ करने को तैयार है। उसके बच्चे आवारा कुत्तों से गलियों में घूमते हैं और बच्चियों की तो दशा ही दर्द भरी है। ये पंक्तियाँ इसका प्रमाण प्रस्तुत करती हैं :

मुट्टी भर भुने चने या मूँगफली देकर/ कोई भी उसकी बच्चियों को फुसला ले जाता है/ वे नहीं जानती 'बलात्कार' शब्द/ वे सुबक-सुबककर रोती है बस/ और अपनी नन्हीं-नन्हीं मैली हथेलियों से/ अपने धूल में सने आँसू पोंछती जाती है।[27]

वह तो आज अपने ही घर में भी सुरक्षित नहीं दिखाई देती। भाई-बहन का पवित्र रिश्ता भी आज सिर्फ नाम का ही रह गया है। इस सच को प्रस्तुत करती हुई ये पंक्तियाँ देखिए, ''उसके लड़के बहनों की दलाली करते हैं ?/ और कटी पतंग के लिए आपस में लड़ते हैं।''[28]

यह कविता उपेक्षित, लाचार और शोषित स्त्री की तस्वीर प्रस्तुत करती है। स्त्री के उपेक्षित, असुरक्षित जीवन की दर्द भरी तस्वीर को किरण अग्रवाल ने 'प्रहार' कविता में भी शब्दबद्ध किया है। बचपन के समय से रू-ब-रू करवाती चालीस वर्ष का सफर पूरा करने पर एक औरत कहती है :

इससे पहले मैं एक दूसरी जेल में थी/ वहीं अनपढ़ अंधेरे में मेरा जन्म हुआ/ मेरे जन्म पर गीत नहीं गाए गए/ मिठाइयाँ नहीं बटीं/ मैं एक अभिशाप थी/ इसे मैंने धीरे-धीरे जाना।[29]

यानी स्त्री के साथ लिंगभेद की राजनीति बचपन से ही शुरू हो जाती है। बचपन के बाद वह अपने यौवनावस्था के समय से भी अवगत करवाती है :

धीरे-धीरे मैंने अपने शरीर को भी पहचाना/ और उन पुरुषों की निगाहों को भी/ जो जेल में आया-जाया करते थे/ एक दिन उन आदमियों में से एक ने जो संयोगवश मेरा चचेरा भाई था/ मुझे अकेली पा दबोच लिया/ और घसीटता हुआ एक अँधेरे कोने में ले गया/ उस दिन मैंने उन निगाहों का राज जाना/ अपने शरीर का रहस्यमय उपयोग पहचाना/ फिर तो यह आए दिन होने लगा/ विरोध करने पर वह धमकी देता।[30]

मर्यादित जीवन जीने के नियम स्त्री पर तो लागू होते हैं, पुरुषों पर नहीं। लिंगभेद के पीछे जो सामाजिक स्थितियाँ हैं, यहाँ उनको उजागर करने की कोशिश की है जिनकी वजह से स्त्री कष्टदायक स्थितियों से गुजर रही है। वहशीपन को झेलते हुए बद से बदतर जिन्दगी जी रही स्त्री की इस स्थिति के लिए आज का मूल्यविहीन समाज ही जिम्मेदार है, जो इतना गिर चुका है कि जानवर के समान व्यवहार कर रहा है। आज भाई पर भी भरोसा नहीं किया जा सकता, पता नहीं वह कब धोखा दे दे। स्त्री आज घर में भी सुरक्षित नहीं दिखाई देती। बलात्कार जैसा जघन्य अपराध उस पतित समाज में ही हो सकता है जहाँ लिंगभेद की राजनीति व्याप्त हो। जहाँ ऐसा अपराध करने वालों को सख्त सजा न दी जाती हो। विवाहोपरांत अपने जीवन को सांझा करती स्त्री को इन पंक्तियों में देख सकते हैं :

एक दिन मैं बीमार पड़ी/ मर्ज बढ़ता ही गया/ वेदना से मेरे शरीर का पोर-पोर तड़फने लगा/ उस रात जब जेलर मेरे पास आया/ मेरी ओर अपना हाथ बढ़ाया/ मैंने वह हाथ बीच में ही रोक दिया/ इस पर वह बिफर उठा/.....उस रात उसने मेरे साथ बलात्कार किया/ और मैं कुछ नहीं कर पायी/ जैसे कि पहली बार कुछ नहीं कर पायी थी/ फिर तो यह जैसे रोज की बात हो गयी/ मैंने विरोध करना भी छोड़ दिया/ क्योंकि ऐसा करने पर वह और अधिक बहशी हो जाता/ तब पहली बार मुझे अहसास हुआ/ कि मैं जेल में हूँ/ कि मैं मैं नहीं हूँ।[31]

विवाह की रस्म के समय पति-पत्नी को हर कार्य में एक-दूसरे की सलाह लेने को कहा जाता है ताकि जीवन सुचारू रूप से शांतिपूर्ण और आनन्दमय रूप से चलता रहे, पर यहाँ तो इसका पूरी तरह से उल्लंघन ही दिखाई पड़ता है। अन्याय सहन कर भी उसने चुप्पी साध रखी है। ये पंक्तियाँ एक असुरक्षित स्त्री का चित्रण करती हैं जो असहाय और लाचार है

तथा अन्याय, अत्याचार झेलती हुई यह महसूस करती है कि स्त्री की अपनी कोई जिन्दगी नहीं होती है, उसे बेबस हो कर अमानवीय व्यवहार सहना पड़ता है। पति-पत्नी के अन्दर जो प्रेम-भावना होती है, वह इन पंक्तियों में नजर नहीं आती। वह पुरुष की सहगामिनी न हो कर उसके अधीन है और अपने व्यभिचारी पति के साथ जिन्दगी काटने को विवश है। वह स्वतन्त्र जीवन नहीं जी सकती, अपने विरुद्ध किये जा रहे उत्पीड़न का विरोध नहीं कर सकती। उसकी इस दशा को देखकर कवयित्री विचलित हो उठी और उसकी वेदना को वाणी दी। शोषण झेलते-झेलते आज वह इस स्थिति में पहुँच चुकी है कि अपने बारे में यह बयान देते नजर आती है :

महज एक मशीन हूँ काम करने वाली/ कि जेल के दूसरे सामानों की तरह/ एक वस्तु हूँ इस्तेमाल की/ तब पहली बार मेहनतकश स्त्रियों की त्रासदी को मैंने जाना/ यौन शोषण का शिकार और वेश्या कहलाने वाली/ औरतों की यन्त्रणा को पहचाना/ गाँव भर में निर्वस्त्र घुमाई जाने वाली/ एक दलित औरत की पथराई आँखें याद आयीं मुझे/ तब पहली बार मुझे लगा/ कि मूल रूप से उन औरतों और मुझ में कोई भेद नहीं है/ कि यह जेल भी विश्व बैंक और मुक्त बाजार की तरह/ स्त्री श्रम और शरीर को लुटने का पितृसत्तात्मक समाज और पूँजीवाद का एक षड्यन्त्र है।[32]

अपनी इस जिन्दगी से वह खुश नहीं दिखती। वह इसे जी नहीं रही है बल्कि ढो रही है। पुरुष के अधीन रह कर वह चुपचाप उत्पीड़न को सहन कर रही है। स्त्री का अपना कोई अस्तित्व नहीं है। वह अन्याय, अत्याचार को चुपचाप झेलती है। इसी सहनशीलता के कारण शोषण-तन्त्र मजबूत होता रहा है और पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्त्री को दबाया-कुचला गया है, जो व्यवहार उसके साथ पुरुष करता है उसे कवयित्री ने बखूबी रेखांकित किया है। भीतर ही भीतर झुलस रही स्त्री जीना चाहती थी, इसलिए अपने को बंधनों से मुक्त करने के लिए प्रयासरत स्त्री को 'प्रहार' कविता की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है :

मुक्ति के लिए मैं छटपटाने लगी/ कैदखाने की दीवारों से सर टकराने लगी/ और मेरी ही मौन चीखें मुझे डराने लगीं/ कि तभी सुनाई दी दुर्ग द्वार पर एक हल्की-सी आहट/ रोशनदान से झाँककर देखा/ बाहर नीम अंधेरे में एक स्त्री आकृति थी/ बाल बिखराए/ साक्षात् रणचंडी/ और उसके पीछे थी/ शोषित, प्रताड़ित, उत्पीड़ित स्त्रियों की एक आक्रामक भीड़/ दुर्ग की दीवारें काँप रही थीं उनकी पदचापों से/ जेल का दरवाजा हिल उठा था उनकी मुट्ठियों के आघातों से/ मैंने भी दरवाजे पर किया अन्दर से एक प्रहार।[33]

संघर्षरत उपेक्षित स्त्री का जीवन के प्रति आत्मविश्वास तथा उसमें आ रही चेतना इन पंक्तियों में विद्यमान है। अनेक यातनाओं को सहन करने के बावजूद स्त्री का जीवन के प्रति आत्मविश्वास यहाँ व्यक्त हुआ है तथा वह बंधनों से मुक्ति के लिए प्रयासरत है ताकि उसका अपना अस्तित्व हो और दुःख से छुटकारा मिले। स्त्री में आयी इस चेतना की अभिव्यक्ति को इनकी कविता 'जो वह नहीं हो सकीं.' में देख सकते हैं इसमें एक बेटी अपनी माँ की हालत को बयान कर कहती है कि वह बहुत कुछ कर सकती थी और बहुत कुछ बन सकती थी, परन्तु वह न कुछ कर सकी और न बन सकी क्योंकि वह सिर्फ एक औरत बनी रही और वह भी एक कमजोर औरत :

जो क्रमशः पिता, पति और पुत्र के हाथों/ स्थानान्तरित होती रही ताउम्र/ तीनों ने ही अपने-अपने ढंग से उसको इस्तेमाल किया/ और वह हाथ बाँधे-उनके आदेश के पालन हेतु खड़ी रही/ अन्तिम साँस तक।[34]

परन्तु अब जब माँ जीवित नहीं है। मैं उसकी हालत का अन्वेषण कर बेचैन हो रही हूँ और अब खामोश रह कर, सिर झुकाकर माँ की तरह सब बरदाश्त नहीं करूँगी। इस बात को वह बुलन्द आवाज के साथ कहती है :

नहीं दोहराया जाएगा माँ का इतिहास/ उसकी बेटी के साथ/ वह लड़ाई जो उसने सपनों में लड़ी/ मैं उसे हकीकत में बदल दूँगी/ मैं वह बनूँगीं जो वह नहीं हो सकीं।[35]

स्त्री के उपेक्षित, असुरक्षित जीवन की दर्द भरी तस्वीर को देखते हुए कहा जा सकता है कि स्त्री यानी देश की आधी आबादी के साथ ऐसा अमानवीय व्यवहार कर देश का विकास सम्भव नहीं है। निश्चित रूप से इसे आज के समय में एक बेहद ज्वलन्त मुद्दा कहा जा सकता है, जिसे ले कर कवयित्री की चिन्ता सही है।

अन्ततः कहें तो कहा जा सकता है कि किरण अग्रवाल ने ठोस आधार वाली कविताओं की रचना की है और आज के परिवेश को अभिव्यक्ति देने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। असंगतियों भरे इस समाज में इनकी कविता जीवन को बेहतर और जीने लायक बनाकर उसकी सार्थकता को चरितार्थ करती है।

संदर्भ संकेत

[1]किरण अग्रवाल, रुकावट के लिए खेद है, पृ0 99
[2]वही, पृ0 98
[3]वही, पृ0 65
[4]वही, पृ0 64
[5]वही, पृ0 69
[6]वही, पृ0 36
[7]किरण अग्रवाल, रुकावट के लिए खेद है, पृ0 37
[8]वही, पृ0 58
[9]वही, पृ0 59
[10]वही, पृ0 47
[11]वही, पृ0 48
[12]वही, पृ0 27
[13]वही, पृ0 12
[14]वही, पृ0 100
[15]वही, पृ0 96
[16]वही, पृ0 97
[17]वही, पृ0 101
[18]राकेश कुमार, नारीवादी विमर्श, पृ0 9
[19]किरण अग्रवाल, रुकावट के लिए खेद है, पृ074-75
[20]वही, पृ0 75
[21]वही, पृ0 75
[22]वही, पृ0 76
[23]वही, पृ0 76
[24]वही, पृ0 76
[25]वही, पृ0 77
[26]वही, पृ0 77
[27]वही, पृ0 78
[28] किरण अग्रवाल, रुकावट के लिए खेद है, पृ0 78
[29]वही, पृ0 70
[30]वही, पृ0 70
[31]वही, पृ0 71-72
[32]किरण अग्रवाल, रुकावट के लिए खेद है, पृ0 72
[33]वही, पृ0 73
[34]वही, पृ0 81
[35]वही, पृ0 82

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,47-52**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 04 फरवरी 2014

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में राम की अवधारणा

डॉ. नीतू कुमारी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *प्राचीन भारतीय वाङ्मय में राम की अवधारणा* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *नीतू कुमारी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में सर्वप्रथम वैदिक साहित्य में 'राम' शब्द का उल्लेख है। वहाँ 'राम' शब्द परमतत्त्व का बोधक नहीं है। राम शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के दशम मण्डल में 'एक राजा' के रूप में किया गया है।[1] ऐतरेय ब्राह्मण में 'राम' श्यापर्ण कुल के ब्राह्मण बतलाए गए हैं, जो जनमेजय के समकालीन थे।[2] शतपथ ब्राह्मण में जिस राम की चर्चा हुई हैं, वे उपतस्विन् के पुत्र थे और याज्ञवल्क्य के समकालीन थे।

वाल्मीकीय रामायण में 'राम' को महापुरूष के रूप में चित्रित किया गया है। बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में ही नारद-वाल्मीकि-वार्तालाप-प्रकरण में ''आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः। कस्य विभ्यति देवाश्च जातरोशस्य संयुगे।। एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे। महर्षे त्वं समर्थोऽसि जातुमेवंविधं नरम्[3] जैसे श्लोकों में 'नर' पद के प्रयोग से यह ज्ञात होता है कि वाल्मीकि ने राम को आदर्श नर के रूप में ही देखा है। उनके राम इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न हुए थे, जो धर्मज्ञ, सत्यसंध, प्रजा के हित-साधन में तत्पर यशस्वी, ज्ञान सम्पन्न पवित्र, जितेन्द्रिय, स्वधर्म और स्वजनों के पालक, वेद-वेदांगों के तत्त्व वेत्ता तथा धनुर्वेद में प्रवीण थे।

वाल्मीकीय रामायण में कहीं कहीं राम के ईश्वरत्व-प्रतिवादक श्लोक मिलते हैं। बालकांड के 15 वें सर्ग से लेकर 18 वें सर्ग तक राम की ईश्वरता वर्णित हुई हैं, जहाँ उन्हें भगवान् विष्णु का अवतार घोषित किया गया हैं। रावण के भीषण अत्याचारों से पीड़ित मानव-समुदाय एवं देवगण के परित्राणार्थ ही भगवान् विष्णु ने दाशरथि राम के रूप में जन्म ग्रहण किया था; इसका स्पष्ट उल्लेख निम्न श्लोंकों में हुआ है, ''एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरूपयातो महाद्युतिः। शंखचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः। बैनतेयं समारूह्य भास्करस्तोयदं यथा। तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः। ब्राह्मणा च समागत्य तत्र तस्यौ समाहितः। सपुत्रपौत्रं समात्यं समन्त्रिज्ञातिबान्धवम्। हत्वा क्रूरं दुराधर्षं देवर्षीणां भयावहम्। दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च। बत्स्यामि मानुषे लोके पालयन् पृथिवीमिमाम्।''

* [एम.ए., पी.एच-डी.] शोधार्थी, हिन्दी विभाग [तिलकमांझी] भागलपुर वि. वि. भागलपुर (बिहार) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

बालकाण्ड के 76 वें सर्ग में परशुराम के निम्नोक्त कथन में राम को साक्षात अविनाशी सुरेश्वर विष्णु बतलाया गया है, 'अक्षयमं मधुहन्तारं जानामित्वां सुरेश्वरम्। धनुषोऽस्म परामर्शात स्वस्ति तेऽस्तु परंतप।'

बाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्डान्तर्गत 117 वें अध्याय में ही ब्रह्मा द्वारा राम को सतत्त्व के रूप में प्रतिपादित किया गया है। सत् या सत्य त्रिकालबाधित होता है। वह सृष्टि के पूर्व में तथा मध्य और अंत में भी रहता है अर्थात् उसकी सत्ता कालत्रय में सर्वत्र अक्षुण्ण रहती है- 'अन्ते चादौ च मध्ये च दृश्यसे परन्तप' किन्तु जो आदि में नहीं है और अंत में भी जिसका अभाव देखा जाता है, किन्तु मध्य में अवस्थिति रहती है, वह क्षर या असत् है। इस दृश्यमान जगत का अस्तित्व ऐसा ही है, क्योंकि सृष्टि के पूर्व नाना नामरूपात्मक कार्यकारणात्मक प्रपंच नहीं रहता और न अंत में अर्थात् प्रलयावस्था में ही वह होता है, केवल दोनों (सृष्टि-पूर्व और प्रलय) के बीच में वह प्रतीयमान होता है। अस्तु, यह परमतत्त्व ब्रह्म राम ही है, जो आदि-मध्य और अंत तीनों में अबाधित-अखंडित होने से सत् के रूप में व्यपदिष्ट होता है। निष्कर्षतः आदि, अंत, मध्य में ब्रह्म राम की त्रिकालाबाधित अवस्थिति उद्घोषित कर यहाँ उसकी पारमार्थिक सत्ता निरूपित की गई।

शरीर के अस्तिव की परिकल्पना आत्मभूत तत्त्व के बिना नहीं की जा सकती, क्योंकि शरीर को आत्मा ही धारणा करती है। विविध श्रुतिवाक्यों में चराचरात्मक जगत को ब्रह्म का शरीर प्रतिपादित किया गया है तथा जगत और ब्रह्म के बीच शरीराशरीरि भाव-सम्बन्ध निरूपित किया गया है। इस श्रुतिसम्मत सिद्धान्त के अनुरूप ही वाल्मीकि रामायण में भी 'जगत सर्वं शरीरं ते (सम्पूर्ण जगत् आपका शरीर है) कहकर ब्रह्म राम को जड़चेतनात्मक निखिल निखिल प्रपंच की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है।

शरीर और शरीरी (जगत् और ब्रह्म) में अपृथक्सिद्धसंबंध की कल्पना करते हुए ही श्रुतियों में 'वैश्वानर रूप' का वर्णन किया गया है। 'अग्निर्मूधा चक्षुषी चंदसूर्यो'[4] अर्थात् अग्नि ब्रह्म का मस्तक है, चंद्र और सूर्य दो नेत्र हैं, दिशाएँ कर्ण हैं तथा प्रकट वेद वाणी है।

महाभारत में रामचरित का विवेचन हुआ है। महाभारत के रामोपाख्यान में पूरी रामकथा वर्णित हुई है। पूना के प्रामाणिक संस्करण में इस रामचरित्र का विस्तार 704 श्लोकों में हैं, जिसमें से पूरे 200 श्लोक युद्ध के वर्णन के लिए प्रयुक्त हुए हैं। आरण्यक पर्व के अन्तर्गत भीम-हनुमान-संवाद की योजना हुई है, जिसमें हनुमान ने भीम से सीताहरण से लेकर रावणादि-वध के अनन्तर अयोध्या प्रत्यागमन तक की सम्पूर्ण राम कथा कही हैं। उक्त अवसर पर उन्होंने रामवतार का उल्लेख करते हुए बताया है, ''अथ दाशरथिवीरो रामो नाम महाबलः। विष्णुर्मानुष्यरूपेण चचार वसुधामिमाम्।।''

इसी प्रकार ''असितो देवलस्तात वाल्मीकिश्च महातपाः[5] संधै च समुनुप्राप्ते त्रेतायां द्वापरस्य च। रामो दाशरथिर्भूत्वा भविष्यामि जगत्पतिः'' जैसे श्लोकों में राम के अवतारी रूप की ओर निर्देश किया है।

पौराणिक साहित्य में राम के अवतारी रूप का प्रभूत उल्लेख हुआ है। विष्णुपुराण (चौथी शती) के चतुर्थ अंश में इक्ष्वाकु कुल के सगर, सौदास, खट्वांग के चरित्र वर्णन के अनन्तर भगवान राम के चरित पर प्रकाश डाला गया है। विष्णुपुराण के अनुसार भगवान कमलनाथ जगत की स्थिति के लिए अपने अंशों से राम-लक्ष्मण-भरत और शत्रुध्न इन चार रूपों में दशरथ के गृह में अवतीर्ण हुए।[6]

विष्णुपुराण में विष्णुरूप ब्रह्मराम को प्रपंचातीत (सकल कार्यकारणात्मक प्रपंचों से रहित) प्रतिपादित किया गया है। वह सम्पूर्ण विशेषणों से रहित एकमेवाद्वितीय हैं, सत्यस्वरूप सर्वात्मभूत एवं पारमार्थिक सत्ता हैं। वह विश्वरूप और अव्यय हैं। वह समस्त कल्याण गुणों (शोभनतम गुणों) से युक्त हैं और अपनी शक्ति (प्रकृति) का आश्रय लेकर प्राणिमात्र की सृष्टि करते हैं।

श्रीमदभागवतपुराण के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत दशम और एकादश अध्यायों में संक्षिप्ततः रामचरित का उल्लेख किया गया है। व्यासपुत्र महामुनि शुकदेव ने राजा परीक्षित को राम-कथा का रसास्वादन कराया है। दशम अध्याय के प्रारंभ में रघुकुल का संक्षिप्त वर्णन करते हुए भगवान् विष्णु के अंशाशरूपत्वेन चारो भ्राताओं (राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुध्न) के आविर्भूत होने की चर्चा की गई है, ''खट्वाङ्गाद् दीर्धबाहुश्च रधुस्तस्मात् पृथुश्रवाः। अजस्ततो महाराजस्तस्माद् दशरथोऽभवत्। तस्यापि भगवानेष साक्षात् ब्रह्ममयो हरिः। अंशाशेनं चतुर्धागात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुध्न इति संज्ञया।[7]

रामचरित्र को आधार बनाकर अनेक नाटक संस्कृत साहित्य में रचे गए हैं- यथा, 'भास' की सचना 'प्रतिभा' में राम-वनवास से लेकर रावण-वध तक की कथा वर्णित है। 'अभिषेक' भी भास की रचना है, जिसमें 6 अंक है। यत्र-तत्र इसमें राम को विष्णु तथा सीता को लक्ष्मी का अवतार घोषित किया गया है। 'उत्तररामचरित' भवमूति की रचना है इसके 7 अंकों में राम के जीवन की उत्तरार्द्ध कथा को निबद्ध किया गया है। 'महावीरचरित' भी भवभूति की रचना है। इसके सात अंकों में रामायण की कथा का पूर्वार्द्ध भाग (राम विवाह, राम वनवास, सीताहरण और राम का राज्यभिषेक) वर्णित है। 'अनर्घ-राघव' मुरारि कवि की रचना है जिसके 7 अंकों में विश्वामित्र के आगमन से लेकर अयोध्या में राज्यभिषेक तक की कथावस्तु का उल्लेख है। राजशेखर की रचना है- 'बालरामायण' 10 अंकों का नाटक है, जिसकी कथा सीता-स्वयंवर से प्रारंभ होकर राम के अयोध्या प्रत्यागमन में समाप्त हो जाता है।

राम के परब्रह्मत्व का प्रतिपादन साम्प्रदायिक औपनिषदिक ग्रंथों में भी किया गया है। इन उपनिषदों में रामपूर्वतापनीयोपनिषद् और रामोत्तरतापनीयोपनिषद् प्रमुख हैं। रामोत्तरतापनीयोपनिषद् के अनुसार राम सत्यस्वरूप परब्रह्म हैं, जिनसे भिन्न कुछ भी नहीं है। इस कारण यह चराचर जगत् सत्यराम का ही सत्य रूप है- रामः सत्यं परब्रह्म रामात् किंचिन्न विद्यते। तस्माद्रामस्य रूपत्वात् नूनं सत्यमिदं जगत्।

इस उपनिषद् में राम को समस्त जगत् का कारण बतलाया गया है। जिस प्रकार वटवृक्ष कारण में अवस्थित है, उस प्रकार यह जड़चेतनात्मक जगत् रामरूप बीज में स्थित है, ''यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महाप्रभुः। तथैव रामबीजस्थ जगदैतच्चराचरम्। जैसे बीज वृक्ष का परिणाम है, वैसे ही यह जगत् ब्रह्मराम का रूपान्तरण है। जगत् को राम का परिणाम घोषित किए जाने के कारण 'रामतापनीयोगपनिषद्' पर परिणामवादी (सत्यकार्यवाद की एक शाखा को माननेवाले का) प्रभाव परिलक्षित होता है।

सीता को राम की प्रकृति और उसकी आह्लादिनी शक्ति बतलाया गया है।[8] परब्रह्मराम के अवतारी स्वरूप की ओर भी संकेत इस उपनिषद् में यत्र-तत्र हुआ है। इसके अनुसार परमचैतन्यमय अद्वितीय पाँचभौतिक अवयवयुक्त शरीर में न बँधने वाला ब्रह्म ही भक्तों की इच्छापूर्ति के लिए, उनके स्नेह से आकृष्ट होकर निराकार होने पर भी चैतन्यमय निराकार शरीर घारण कर लेता है।[9] विश्वंभरोपनिषद् में राम को सगुण-निर्गुण से परे अवाङ्मनसगोचर कहा गया है, जो अयोध्या में स्वयं रासलीला करते हैं।[10]

'योगवासिष्ठ' आठवीं शती की रचना बताई जाती है, जिसमें वसिष्ठ और रामचंद्र का संवाद वर्णित है। गुरू वसिष्ठ ने राम को मोक्ष-प्राप्ति का उपदेश दिया है। असके 'वैराग्यप्रकरण' में रामावतार के चार कारणों (सनत्कुमार, भृगु, वृप्दा तथा देवशर्मा ब्राह्मण का शाप) पर प्रकाश डाला गया है। 'निर्वाणप्रकरण' के अन्तर्गत ब्रह्म के तीन स्वरूप बतलाए गए हैं- (1) निर्गुण-निराकार, (2 सगुण-निराकार, (3) सगुण-साकार।[11]

'अध्यात्मरामायण' में अद्वैत वेदान्त के अनुसार राम के स्वरूप का निरूपण किया गया है। इसमें राम के दो स्वरूप बतलाए गए हैं- (1) निर्गुण-निर्विशेष, (2) सगुण-सविशेष। निर्गुण-निर्विशेष स्वरूप को अद्वैत वेदान्त की शब्दावली में 'स्वरूपलक्षण' कहा जाता है तथा 'सगुण-सविशेषरूप को 'तटस्थ-लक्षण' की संज्ञा दी जाती है। निर्गुणत्व उसका पारमार्थिक स्वरूप है, इसलिए उसे 'स्वरूप लक्षण' कहा गया है तथा सगुणत्व उसका अविद्याकल्पित रूप है, जिससे वह किंचिन्मात्र भी लिप्त नहीं होता, इस कारण उसे 'तटस्थ लक्षण' कहा जाता है।

राम परमार्थतः परब्रह्म, सच्चिदानन्द, अद्वितीय, सम्पूर्ण उपाधियों से रहित, सत्तामान, मन-वाणी के अगोचर, आनंदघन, निर्मल, शांत, निर्विकार, निरंजन, सर्वव्यापक और स्वयं प्रकाश है, 'रामं विद्धि परब्रह्म सच्चिदान्नदमद्वयम्। सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम्। आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरंजनम्। सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम्।।

ब्रह्मराम व्यवहारतः सृष्टि का सर्जक-पालक एवं संहारक है। वही रामादि अवतार ग्रहण कर दानवता का उन्मूलन कर संत्रस्त मानवता का उद्धार करता है और भक्तों को अपने दर्शन देकर कृतार्थ करता है। परन्तु ब्रह्म का यह स्वरूप औपाधिक है अर्थात् अध्यास-जन्म है, जिसे अज्ञानीजन यथार्थ मान लेते हैं, और राम को प्राकृत जन की तरह माया-मोह में पड़ा हुआ समझ लेते हैं, किन्तु यथार्थता तो यह है कि राम सर्वदा मायातीत हैं, निर्मल-निर्लेप हैं, सत्-चित्-आनंद हैं। अद्वैत वेदान्त की तरह ही 'अध्यात्मरामायण' में सगुण रूप को अविद्याकल्पित बतलाते हुए यह कहा गया है कि जैसे

अध्यारोपित पदार्थ (सर्प) से अधिष्ठान (रज्जु) सदैव निर्लिप्त रहता है, वैसे ही केवल राम अपने तटस्थलक्षण (सगुणत्व) से कभी भी लिप्त नहीं होता, क्योंकि तटस्थलक्षण रज्जु आदि में अध्यास्त सर्पादि की भाँति अविद्याकल्पित हुआ करते हैं।

'अध्यात्म रामायण' में सगुण-स्वरूप के स्मरण एवं अनुध्यान पर सर्वत्र बल दिया गया है। उसमें वर्णित है कि भक्त का मन हमेशा श्यामल मूर्ति राम का सीता और लक्ष्मण सहित चिंतन करता रहे, जो धनुषवाण धारण किए हुए हैं तथा जो पीताम्बरी, मुकुट विभूषित, भुजानन्द नूपुर, मोतियों की माला, कौस्तुभमणि और कुण्डलों से सुशोभित हैं, 'मनसं श्यामलं रूपं सीतालक्ष्मणसंयुतम्। धनुर्वाणधरं पीतंवाससं मुकुटोज्ज्वलम्।। अंगं दैर्नूपुरैर्मुक्ताहारैः कौस्तुभकुण्डलैः।'

भक्त की चित्तवृत्ति सदा राम के चरण कमलों में लगी रहे, वाणी उसके नाम-संकीर्त्तन और कथा-वार्ता में संलग्न रहे, नेत्र सदैव उसकी मूर्ति के दर्शन करते रहें कान उसकी अवतारी लीलाओं का श्रवण करें और मेरे पैर आपके मन्दिरों की यात्रा करते रहें, 'त्वन्मूर्तिभक्तान् स्वगुरूं च चक्षुः पश्यत्वजस्त्रं स शृणोतु कर्णः। त्वज्जन्मकर्माणि च पादयुग्मं ब्रजत्वजस्त्रं तव मन्दिराणि।

सप्तविंशसप्तसर्गीय अद्भुत रामायण के द्वितीय सर्ग से लेकर अष्टम सर्गों तक राम के अवतार ग्रहण विषयक मूलभूत उद्धेश्य का वर्णन किया गया है। इसमें नारद तथा पर्वत द्वारा विष्णु को दिया गया शाप रामावतार का कारण बतलाया गया है। 'आनन्दरामायण' के चतुर्थ कांड में सीता का नखशिख-वर्णन अत्यन्त मनोरम बन पड़ा है। इसका अन्तिम कांड 'मनोहर काड' के नाम से विश्रुत है, जिसमें रामोपासना, राम-नाम-महिमा, रामकवच प्रभृति तथ्य वर्णित किए गए है। 'तत्त्वसंग्रह रामायण' (रामब्रह्मानंद-प्रणति 17 वीं शती) में राम के परब्रह्मत्व का प्रतिपादन हुआ है, साथ ही उसके अवतारीरूप का भी विषद वर्णन हुआ है। 'भुशुण्डिरामायण' (हस्तलिखित प्रति श्रवणकुंज अयोध्या में सुरक्षित) रसिक सम्प्रदाय का एक प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है जिसमें राम-जानकी के मनोरम विलास-चित्र अंकित किए गए हैं। इसमें यह वर्णित हुआ है कि भगवती सीता और भगवान राम के अंशों से क्रमशः राधिका और कृष्ण ने अवतार लेकर लोकरंजक लीलाओं का अभिनय किया। 'चित्रकूट-महात्म्य' एक हस्तलिखित ग्रंथ है, जो फादर कामिल बुल्के के मतानुसार आदिरामायण का अंश है। इसमें वर्णित है कि चित्रकूट के सांतानक वन में अविस्थत सरोवर के मध्यभागमें रम्य मण्डप की वेदिका पर सीता अैर उसकी सखियों के साथ भगवान राम नित्य रास-क्रीड़ा निरत हैं। 'मन्त्ररामायण' (नीलकंठ स्वामी-प्रणीत) में रामायण की वेदमूलकता प्रतिपादित की गई है। नीलकंठ के मतानुसार रामके प्रादुर्भाव के साथ ही वेद भी प्रकट हुआ।

श्रीरामदास गौड़ के 'हिन्दुत्व' नामक ग्रंथ में विविध रामायण-ग्रथों का उल्लेख हुआ है, जिनमें महारामायण, रामायणमणिरत्न, मन्दरामायण, मंजुल रामायण, चान्द्ररामायण, रामायणमहामाला, शौर्यरामायण, लोमशरामायण, संस्कृतरामायण, दुस्तरामायण, अगस्तय-रामायण, सौहार्दरामायण, श्रवणरामायण, प्रभृति रामायण-ग्रंथ प्रसिद्ध हैं, जिनमें राम-भक्त के विविध उपाय, राम भक्ति के लक्षण, राम नाम महिमा, नवधाभक्ति, भुशुण्डि द्वारा गरूड़ का मोह भंग जैसे विधि प्रसंग यथास्थान भलीभाँति निरूपित किए गए हैं।

'सदाशिवसंहिता' स्वामी रामचन्द्र द्वारा सम्पादित रामनवत्नसारसंग्रह में संकलित है। इसमें सम्पूर्ण सौभाग्यों का निलय, सर्वआनन्दप्रद कौसल्यानन्दवर्धन राम को भवखण्डन में समर्थ प्रतिपादित किया गया है- सर्वसौभाग्यनिलयं, सर्वावन्दैकदायकम्। कौसल्यानन्दनं रामं केवलं भवखण्डनम्।[12] सदाशिवसंहिता के अनुरूप ही रामचरितमानस के उत्तराकाण्ड में ब्रह्मराम को अनन्त कामदेवों के समान सुन्दर शरीरधारी अनन्तकोटी दुर्गाओं के समान असंख्य शत्रुओं के विनाशक, कोटि इन्द्रों के समान अपरिमित भोगैश्चर्य से युक्त, कोटि आकाशों के सदृश अनन्त अवकाश सम्पन्न, कोटि पवनदेवों के तुल्य विपुल बलशाली, कोटि सूर्यों के समान वेदीप्यमान, कोटि चन्द्रों के समान अत्यन्त सुन्दर-शीतल और भव-भय--नाशक कोटि कालों के समान अत्यन्त दुस्मतर, दुर्गम और दुरन्त, कोटि अग्नियों के सदृश्य दुराधर्ष और षडैश्वर्यवान् प्रतिपादित किया गया है, 'राम काम सम कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन। सक्रकोटि सत सरिस बिलासा। नभ सतकोटि अमित अवकाशा। मरूतकोटि सतनिपुल बल, रबि रात कोटि प्रकास। ससि सतकोटि सुशीतल, समन सकल भवत्रास। कालकोटि सत सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरन्त। धूमकेतु सतकोटि सम दुराधर्ष भगवन्त।'[13]

आलवार संतो की रचनाओं में राम के प्रति अनन्य आस्था व्यक्त की गई है और उन्हें परमाराध्य के रूप में स्वीकृति प्रदान की गई है। आलवार शिरोमणि 'नम्मालवार (शब्दकोष स्वामी) के चार ग्रंथ तमिलप्रबन्धम् में संगृहीत हैं। उनका सबसे

बड़ा ग्रंथ तिरूवायमोली है, जिसका संस्कृतरूपान्तर 'सहस्त्रगीति' नाम से किया गया है। नम्मालावार ने 'सहस्रगीति' में राम की अनन्यशरणागति का उल्लेख किया है। उनके शब्दों में, सत् और असत् कर्म-समुदाय केवल दुःख ही उत्पन्न करता है। उससे विनिर्मुक्त तथा उसे अतिक्रान्त करके स्थित रहने वाली एक दिव्य ज्योति है जो अज्ञानपाश में घसीट कर ले जाने वाले यमदूतों के लिए क्रूर विष के समान है। वही ज्योति दशरथपुत्र राम है, जिसके बिना मैं अन्य किसी की शरण में नहीं जा सकता है।[14]

श्रीगुरूग्रंथ साहिब में रामानंद जी का एक पद संकलित है, जिसमें आन्तरिक साधना का समर्थन किया गया है, और बाह्याचारों की व्यर्थता निरूपित की गई है। इसमें स्वामी रामानन्द ने राम की प्राप्ति के निमित्त तीर्थो और मन्दिरों में जाने को व्यर्थ बतलाया है और हृदयस्थपरमतत्त्व को अन्तः साधन के द्वारा ही प्राप्त करने पर बल दिया है, 'जहाजाईऐ तह जल परवान। तू पूरि रहिओ है सभ समान। वेद पुरान सम देखे जोइ। ऊहां तउ जाईऐ जउ ईहां न होइ। सतिगुर मैं बलिहारी तोर। जिनि सकल बिकल भ्रम काटे मोर। रामानन्द सुआमी रमत ब्रह्म। गर्व का सबदु काटै कोटि करम।।'[15]

नाथपंथी साधक गुरू गोरखनाथ की रचनाओं में 'राम' शब्द का विपुल प्रयोग 'परम तत्त्व' के अर्थ में हुआ है। इनकी हिन्दी वाणियों का संकलन एवं सम्पादन डॉ पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने किया है। 'गगन सिषर महँ बालक बोले ताका नाम धरहुगे कैसा।'[16] जैसी उक्तियों में गुरू गोरखनाथ ने शून्यमण्डल (सहस्रारस्थ) बालक के रूप में जिस परमतत्त्व की ओर संकेत किया है, वह परमतत्त्व राम ही है जो मनवाणी से अगोचर होने के कारण अनिर्वचनीय तत्त्व है। यही कारण है कि वे मन को राजा राम से तादात्म्य स्थापित कर निर्द्वन्द्व होने का उपदेश देते हैं और सूर्य-चन्द्र का योग होने पर ही राजा राम के साक्षात्कार की स्थिति संभव बतलाते हैं, 'मन रे राजा राम होइलै निर्द्वन्द्व। मूलकमलै साजिलै रविचन्द।'

ध्यातव्य है कि गुरू गोरखनाथ सहस्त्रार से स्रवित होने वाले महारस को रामरस की संज्ञा से अभिहित करते हैं और दश इन्द्रियों (पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों) एवं मन को स्थिर रखकर इस महारस रूपी रामरसायन का ही रसास्वादन करने पर बल देते हैं, 'मन इन्द्रिय को अस्थिर राखै। रामरसायन रसनां चाषै।'

संत जयदेव (1170 ई0) के अनुसार परमात्मा राम सर्वोपरि एवं सबका मूल (आधार) है, सबमें परिव्याप्त है, अद्वितीय है और वह सत्यस्वरूप है। वह प्रभु अचिन्त्य, अत्यन्त, अद्भुत निर्लेप एवं आकाशवद्व्याापी है। ऐसे परम प्रभु राम के सुन्दर नाम का स्मरण करने से जन्म-मरण एवं बुढ़ापा, चिन्ता का भय, दुःख नहीं होता, 'परमादि पुरूषमनोपिमं सति आदि भावरतं। परमदभुतं परं जदि चिंति सख गतं। केवल रामनाम मनोरमं यदि अमृत ततमइअं। न दनोति जसमरणेन जनम जराधि मरण भइअं।'[17]

केवल राम की शरण ही सुखप्रद है, वही ताप-पाप सबको विनष्ट कर जीव को परमानन्द की शीतल छाया प्रदान करने में समर्थ है। अतः यदि यम आदि पर विजय प्राप्त करना चाहता है, शोभा एवं सुख का अभिलाषी है, तो काम-क्रोध आदि विकारों का त्याग कर दे और उस प्रभु की शरण ले ले जो त्रिकालाबाधित सत्ता है, सर्वोपरि है और सदा आनन्दस्वरूप है। संत जयदेव सामान्य जनों को समस्त सिद्धियों के आधार गोविन्द के भजन का उपदेश देते हैं, 'गोविन्द गोविन्देति जपि नर सकल सिधि पदं।'

संदर्भ सूची

1. *ऋग्वेद* 10/93/14
2. राम कथा -डॉ0 कामिल प्रसाद बुल्के, वैदिक साहित्य और रामकथा, पृष्ठ संख्या 16
3. *श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण,* प्रथम सर्ग, श्लोक 4,5, पृष्ठ संख्या 26
4. *मुण्डकोपनिषद्* 2/1/4, पृ0 सं0 - 57
5. *महाभारत* 12/200
6. श्रीविष्णुपुराणम् (मोतीलाल जालान, गीताप्रेस गोरखपुर) चतुर्थ अंश, अंक- 4, पृष्ठ संख्या 87
7. श्रीमद्भागवतपुराण (मूलमात्र) गीताप्रेस गोरखपुर, दशम सं0 2037, नवम स्कन्ध, अध्याय- 10/1,2
8. रामोत्तरतापनीयोपनिषद कंडिका- 05

[9.] रामभक्तिशाखा -डॉ0 रामनिरंजन पाण्डेय, पृष्ठ संख्या 08
[10.] *विश्वंभरोपनिषद्* -05
[11.] *योगवासिष्ठ,* निर्वाणप्रकरण, पूर्वार्ध, सर्ग 53/36-37
[12.] *सदाशिवसंहिता,* 5,7,12 (रा0 म0 में म0 उ0, पृष्ठ संख्या 144)
[13.] *रामचरितमानस* (गीताप्रेस गोरखपुर) मूल गुटका उत्तराकांड दोहा -90/7,8
[14.] भागवत सम्प्रदाय -डॉ0 बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ संख्या 261, 262
[15.] *श्री गुरूग्रंथ साहिब* (देवनागरी संस्करण), पृष्ठ संख्या 1195
[16.] *गोरखबानी,* सम्पादक -पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, पृष्ठ संख्या 155/59
[17.] *श्री गुरूग्रंथ साहिब,* पृष्ठ संख्या 526

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,53-56**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 04 फरवरी 2014

जैन और बौद्ध धर्म के उद्‌भव की भौतिक पृष्ठभूमि

मधुलिका सिन्हा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *जैन और बौद्ध धर्म के उद्‌भव की भौतिक पृष्ठभूमि* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मधुलिका सिन्हा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में उत्तर भारत की मध्य गंगा घाटी क्षेत्र में अनेक धर्मिक सम्प्रदायों का उदय हुआ। इन प्रचलित विभिन्न सम्प्रदायों में से आगे चलकर केवल बौद्ध एवं जैन धर्म ही अधिक प्रसिद्ध हुए। भारत में इन आन्दोलनों के उद्‌भव के अनेक प्रत्यक्ष और परोक्ष कारण थे, जो तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्त्तनों में निहित थे। जहाँ तक जैन और बौद्ध धर्म के उद्‌भव अैर स्वरूप का प्रश्न है, तो इसकी समुचित जानकारी के लिए यह आवश्यक है कि पहले हम उसके उद्‌भव के भौतिक पृष्ठभूमि को भलीभांति समझ लें।

700 ई.पू. के आसपास पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार की जनता के आर्थिक जीवन में बहुत बड़ा परिवर्त्तन दिखा। इसका कारण यह था कि इन क्षेत्रों के लोग पहले की अपेक्षा बड़े पैमाने पर लोहे का प्रयोग करने लगे थे। भाथी के प्रयोग से लोहे की नयी शिल्पकला का फैलाव होने लगा और बड़े पैमाने पर लोहे के उपकरणों और हथियारों के उत्पादन का सिलसिला शुरू हुआ। गहरी जुताई के लिए लोहे के फालों का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा। पाणिनी ने भी कहा था कि खेतों को दो-तीन बार जोता जाता था और पैदावार के मुताबिक उनका वर्गीकरण किया जाता था। कृषि कौशल में वृद्धि के साथ-साथ पौधें के बारे में लोगों की जानकारी भी बढ़ती गयी। उस समय के ग्रंथों में विभिन्न प्रकार के चावलों का उल्लेख मिलता है।

लोहे के उपकरणों और हथियारों के प्रयोग से मुख्यतः पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के जंगलों को साफ करने तथा वहाँ की भूमि को कृषि योग्य बनाने में खूब मदद मिली। इन भूभागों में 40'' औसत वार्षिक वर्षा होने के कारण अवश्य ही घने जंगल रहे होंगे। धर्मग्रंथों में भी जंगलों की सफाई को स्वीकृति प्रदान की गई थी। एक कानूनवेत्ता के अनुसार राजा कृषि के विस्तार के लिए अथवा यज्ञों के लिए फलों तथा फूलों वाले वृक्षों को कटवा सकता था। स्पष्टतः जंगलों की सफाई का काम मुख्य रूप से राज्य ने किया, लेकिन व्यक्तिगत प्रयासों की भी भूमिका थी।

* [यू.जी.सी.-जे.आर.एफ.] शोधार्थी, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय पटना (बिहार) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

कारगर उपकरणों के उपयोग के साथ-साथ कृषि के ज्ञान में वृद्धि हुई और फसलों में विविधता आई। प्रारंभिक बौद्ध पाठों में उत्तम, मध्यम, निकृष्ट कोटि के खेतों का जिक्र हुआ है तथा उनसे सिंचाई के ज्ञान और खेतीबारी की प्रक्रियाओं की भी जानकारी मिलती है। जमीन को कुछ समय के लिए परती छोड़ देना भी इन प्रक्रियाओं में शामिल था। छह ऋतुओं और 27 नक्षत्रों पर आधारित कृषि पंचांग का ज्ञान इस युग में सुप्रतिष्ठित हो चुका था। धन की सिंचित खेती से खाद्यान्नों की पैदावार बढ़ी। धन के अलावा किसान जौ, गेहूँ, मोटे अनाज, कपास और गन्ना भी पैदा करने लगे। ऐसे पौधें और फलों के वृक्षों के उपयोग का भी उल्लेख मिलता है जिनका उल्लेख पूर्ववर्ती पाठों में नहीं मिलता जैसे- आम। नई कृषि-अर्थव्यवस्था में पशुपालन भी सहायक था। पुरातत्त्ववेत्ताओं ने बड़ी संख्या में मवेशी, भेड़, बकरी, घोड़े, सुअर की हड्डियाँ ढूँढ़ निकाली है। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि हलों से की जाने वाली खेती का दूर-दूर तक विस्तार हुआ और बस्तियों की संख्या में अभिवृद्धि हुई। इस तथ्य की पुष्टि तब और पुख्ता हो जाती है जब हमारा ध्यान इस बात की ओर जाता है कि गंगा के ऊपरी और मध्यवर्ती बहावों वाले मैदानों में छठी से लेकर पहली सदी ई.पू. के कालखण्ड में पड़ने वाले कम से कम 550 ऐसे स्थलों से पता चलता है जिनमें NBPW (उत्तरी कृष्ण पालिशदार मृदभांड) नामक उत्कृष्ट बर्त्तन मिले हैं।

कृषि के उन्नत ज्ञान और कारगर उपकरणों के उपयोग से किसान अधिक अधिशेष का उत्पादन करने लगे। इससे शहरों के विकास में सहायता मिली। चौथी शताब्दी ई.पू. में सिकन्दर के एक कार्याधिकारी एरिस्टोबुलस ने सिन्धु क्षेत्र में एक हजार से भी अधिक शहरों के ध्वंसावशेषों को देखा था। अगर इसमें अतिरंजना हो तो भी इसमें संदेह नहीं कि उत्तर भारत में बहुत से शहर उभर आए। 600-300 ई.पू. के काल में पूरे देश में लगभग साठ शहर थे। श्रावस्ती बीस बड़े नगरों में से था और इनमें से छह इतने महत्वपूर्ण थे कि स्रोतों में उनका संबंध बुद्ध के जीवन से बताया गया है, ये थे- चंपा, राजगृह, साकेत, कौशाम्बी, कुशीनारा। इस प्रकार ज्ञात होता है कि 500 ई.पू. के आसपास एक असाधारण शहरी जीवन का सूत्रपात हो चुका था।

शहरों के विकास में सिकन्दर के सैनिक अभियान से भी मदद मिली। इसकी सेना यूनान की मुख्य भूमि से निकलकर भारत तक पहुँची थी। इससे अनेक व्यापारिक मार्ग खुले और इस संभावना का पता चला कि उत्तर पश्चिम भारत और पश्चिम एशिया के बीच व्यापार हो सकता था। इसके अलावा दक्कन और दक्षिण भारत को पहुँचने वाले मार्गों से उत्तर भारत के माल के लिए बाजार मिले। उत्तरी दक्कन में उत्तरी कृष्ण पालिशदार मृदभांड जिनका उत्पादन केन्द्र गंगा की घाटी थी और लोहे की ऐसी वस्तुएँ मिली हैं जो प्राक्-मौर्य काल की मानी गई है। इससे उत्तर और दक्षिण के बीच कुछ व्यापारिक संबंध का आभास मिलता है। मुख्य व्यापार मार्ग गंगा के इर्द-गिर्द राजगृह से कौशाम्बी की ओर गुजरते थे और ये उज्जैन को पश्चिम के प्रमुख समुद्री बंदरगाह भड़ौंच से जोड़ते थे। कौशाम्बी से पश्चिम की ओर आगे बढ़ते हुए पंजाब को पार करके जो मार्ग तक्षशिला पहुँचता था उसके जरिए पश्चिमोत्तर के साथ भारत का थल मार्गीय व्यापार चलता था।

व्यापार ने शहरी जीवन को विशेष रूप से प्रभावित और विकसित किया। जातकों में 500 से लेकर 1000 गाड़ियों के साथ एक जगह से दूसरी जगह आने-जाने वाले काफिलों के कई वर्णन मिलते हैं। घोड़ों के सौदागर तथा अन्य कई प्रकार के सौदागर अपनी चीजों को बेचने के लिए एक जगह से दूसरी जगह जाया करते थे। विदित होता है कि कपड़ा व्यापार का एक महत्वपूर्ण माल था क्योंकि प्रारंभिक पालि ग्रंथों से लगता है कि बुद्ध के काल में उत्तर-पूर्वी भारत में कपास का आम इस्तेमाल होने लगा था। लेकिन व्यापार मुख्य रूप से विलासिता की वस्तुओं का ही होता था।

वैदिकोत्तर युग में धातु के सिक्कों के प्रयोग के कारण व्यापार को बढ़ावा मिला। वैदिक साक्ष्य के बावजूद पूर्ववर्ती युग में सिक्कों के चलन की बात संदेहास्पद बनी हुई है। भारत में सबसे प्राचीन काल के जो सिक्के मिले हैं, उन्हें हम बौद्ध युग के पहले के सिक्के नहीं मान सकते हैं। ये सिक्के सौदागरों द्वारा जारी किए गए थे और ये आहत सिक्के थे। ज्ञात होता है कि इस काल में सिक्कों का खूब उपयोग होने लगा था और तुच्छ से तुच्छ वस्तु की भी कीमत मुद्रा के रूप में आँकी जाती थी।

शहरों का विकास, व्यापार और मौद्रिक अर्थव्यवस्था की अभिवृद्धि उन विविध कलाओं और शिल्पों के विकास से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई थी जिनका प्रारंभ पूर्ववर्ती काल में हो चुका था। प्रारंभिक बौद्ध पाठों में धोबी, रंगरेज, रंगसाज, नाई, दर्जी, बुनकर, रसोइये जैसे सेवाकार्य में लगे लोगों के अलावा वस्तु निर्माण के अनेक शिल्पों के भी उल्लेख मिलते हैं।

इतने सारे शिल्पों के उल्लेख का अर्थ यह हुआ कि माल उत्पादन के क्षेत्र में अलग-अलग लोग अलग-अलग कार्यों में अधिकाधिक दक्षता प्राप्त करते जा रहे थे।

कारीगर और शिल्पी बहुधा श्रेणियों और निगमों में संगठित होते थे। उत्तर बौद्ध साहित्य में राजगृह में अठारह श्रेणियों का उल्लेख हुआ है। प्रत्येक श्रेणी शहर के एक खास हिस्से में निवास करती थी। इससे न केवल शिल्पों तथा उद्योगों का स्थानीयकरण हुआ बल्कि शिल्पों के ज्ञान के वंशानुगत रूप से पिता से पुत्र को प्राप्त होने का सिलसिला भी आरंभ हुआ। प्रत्येक श्रेणी का अपना एक प्रधान (जेट्ठक) होता था। सेट्ठि जो कभी-कभी श्रेणियों के प्रधान भी होते थे, व्यापार और उद्योग संभालते थे। वे आमतौर पर शहरों में रहते थे, लेकिन इनमें से जिन लोगों को राजा निर्वाह के लिए गाँवों के राजस्व (भोगागम) दे देता था उन्हें गाँवों से संबंध बनाए रखना पड़ता था। सेट्ठि एक अर्थ में साहूकार होता था और कभी-कभी श्रेणि का प्रधान भी। सर्वसत्तावादी और निरंकुश राजा भी उसके साथ सम्मान का व्यवहार करते थे। इन सबका अर्थ यह हुआ कि शहरों में सेट्ठि और शिल्पी महत्वपूर्ण सामाजिक समूहों के रूप में उभर रहे थे।

एक नया सामाजिक समूह अपने धन के बल पर गाँवों में भी प्रभाव जमाता जा रहा था। भूमि का बड़ा भाग गृहपतियों (भू-स्वामियों) के अधिकार में था। प्राचीन काल में गृहपति शब्द से किसी भी महत्वपूर्ण यज्ञ के अवसर पर अतिथि की सेवा करने वाले व्यक्ति और प्रमुख याजक का बोध होता था। लेकिन बौद्ध युग में इससे ऐसे व्यक्ति का बोध होने लगा जो किसी भी जाति के एक विशाल पितृ-सत्तात्मक परिवार का मुखिया हो और जिसे मुख्यतः अपने धन के कारण सम्मान मिला हो। अब वेदोत्तर काल में सम्पत्ति का अनुमान गोधन से नहीं बल्कि भूमि से लगाया जाता था। प्रारंभिक बौद्ध साहित्य में समृद्ध गृहपतियों के अनेक उल्लेख मिलते हैं जैसे- गृहपति मेंडक के बारे में कहा गया कि वह शाही सेना का वेतन दिया करता था। गृहपति अनाथपिंडिक के बारे में उल्लेख है कि उससे एक बहुत बड़ी राशि देकर जेतवन खरीदा और बाद में उसको बुद्ध को दान कर दिया। कभी-कभी गृहपति उदीयमान दुकानदारों को पैसा उधार देते भी बताए गए हैं। गृहपतियों का वैदिक गृहस्थ की स्थिति से निकलकर गृहस्थी के अपेक्षाकृत धनाढ्य मुखियों के रूप में उभर आना समाज के अंदर धन की बढ़ती हुई असमानता का द्योतक माना जा सकता है। सामान्य लोग, दास और मजदूर उसके धन से ईर्ष्या करने लगे थे और उसका अहित भी सोचने लगे थे, इसलिए अपनी सुरक्षा के लिए गृहपति अंगरक्षक भी रखने लगे थे।

गाँवों और शहरों में एक नए धनाढ्य वर्ग के उद्भव से आर्थिक विषमताएँ उत्पन्न हो गई। फलस्वरूप बंधुत्व और समानता के कबीलाई आदर्शों का लोप हो गया। वैदिक काल के अनक कबीलों पर मुट्ठी भर लोगों के हाथों में निजी संपत्ति के संकेन्द्रन का गहरा प्रभाव पड़ा। इससे स्वभातः चार प्रकार की व्यवस्थाएँ खड़ी हो गई और वैदिकोत्तर ब्राह्मण विधि ग्रंथों में पहली बार सामाजिक, कानूनी और आर्थिक विशेषाधिकारों तथा विषमताओं की व्याख्या की गई। लौह शिल्पकला के ज्ञान से अप्रभावित रहने वाली अनेक आर्येत्तर जनजातियाँ भौतिक दृष्टिकोण से बहुत ही निम्न स्तर का जीवन बिता रही थी। आदिम जनजातियाँ यंत्रों के ज्ञान और कृषि संस्कृति से लैस वर्ण विभक्त समाज से अलग-अलग रहकर मुख्यतः शिकारियों और बहेलियों के रूप में जीवन-यापन कर रही थी। संभवतः उनके सांस्कृतिक पिछड़ेपन के फलस्वरूप वैदिकोत्तर काल में अस्पृश्यता का विकास हो गया।

लोगों के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन के नई विशेषताएँ वैदिक कर्मकांड तथा यज्ञ से मेल नहीं खाती थी। ये यज्ञ और कर्मकांड पशुधन के अंधाधुंध विनाश का हेतु बन गए थे जबकि पशुधन ही हलों से की जाने वाली नई खेती का मुख्य आधार था। वैदिक धर्मिक आचार व्यवहारों और उदीयमान सामाजिक समूहों के बीच के अंतर्विरोध के फलस्वरूप ऐसे नए धर्मिक और दार्शनिक विचारों की तलाश शुरू हुई जो लोगों के भौतिक जीवन में आये बुनियादी परिवर्तनों से मेल खाते हो। इस प्रकार इसी भौतिक पृष्ठभूमि में छठी शताब्दी ई.पू. में गंगा घाटी में बुद्ध, महावीर समेत अनेक नए धार्मिक दार्शनिक शिक्षकों का उदय हुआ जो वैदिक धर्म के खिलाफ आवाज उठाने लगे।

संदर्भ सूची

आर. एस. शर्मा (1983) -मैटेरियल कल्चर एंड सोशल फार्मेशंस इन एनशिएंट इंडिया; दिल्ली

ए. घोष (1973) -दि सिटी इन अर्ली हिस्टोरिकल इंडिया, शिमला

डी. डी. कौशाम्बी (1981) -इंडियन न्युमेस्मेटिक्स, दिल्ली
आर. एस. शर्मा (1980) -शुद्राज इन एनशिएंट इंडिया, दिल्ली
वासुदेवशरण अग्रवाल (1953) -इंडिया ऐज नोज टु पाणिनी, लखनऊ
ए. के. वार्डर (1970) -इंडियन बुद्धिज़्म, दिल्ली
विंसेंट स्मिथ (1904) -अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ऑक्सफोर्ड
डी. एन. झा (2000) -प्राचीन भारत : सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की पड़ताल, दिल्ली
जातक (1895-1907), अनुवाद, छह जिल्दें, लंदन
विनय पिटक (1938-52), अनुवाद, आई. बी. हार्नर, पांच भाग, सैक्रेड बुक्स ऑफ दि बुद्धिस्ट्स, लंदन
हेरोडोटस की हिस्ट्री (1913-14), ऑक्सपफोर्ड
जैन सूत्राज (1884-85), अनुवाद, जे. जैकोबी, ऑक्सफोर्ड,

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,57-59**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 05 फरवरी 2014

मिस्त्र के विकास में मेहमत अली (मोहम्मद अली) का योगदान

डॉ. अशोक कुमार*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मिस्त्र के विकास में मेहमत अली (मोहम्मद अली) का योगदान* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *अशोक कुमार* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

मेहमत अली ने अपने शासन काल में मिस्र में व्याप्त भ्रष्टाचार का अंत कर शक्तिशाली अनुशासित सेना की स्थापना की इन्हीं के समय में मिस्र में आर्थिक संपन्नता आई एवं उसका आधुनिकीकरण भी हुआ। इन्होंने पाश्चात्य विचारों को प्रश्रय दिया एवं फ्रांसीसी विशेषज्ञों द्वारा व्यापार, विज्ञान और शिक्षा का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया। इस कार्य को करने के लिए उन्हे बहुत संघर्ष करना पड़ा क्योंकि जब इन्होंने मिस्र का शासन सम्भाला था उस समय मिस्र पूरी तरह से अव्यवस्थित, रूढ़िवादी और धर्मान्ध इकाइयों में बटा हुआ था इन्होंने मिस्र में लगभग 40 वर्ष के शासन काल में मिस्र को नया जीवन प्रदान किया एवं देश व्यापी सुधार योजना लागू की इसलिए उन्हें आधुनिक मिस्र का संस्थापक भी कहा जाता है। इस कारण मेहमत अली के शासन काल की महत्ता एवं मिस्र के विकास के लिए योगदान की भूमिका के सन्दर्भ में उक्त शोध पत्र उपर्युक्त शीर्षक पर आधारित है।

संसार के इतिहास मे मिस्र का विशेष स्थान है; क्योंकि इसकी विशेष भौगोलिक स्थिति के कारण प्राचीन काल से ही प्रमुख देशों ने इस देश पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की चेष्टा करते रहे है। हम इसे पूरब तथा पश्चिम का संगम स्थल भी कह सकते हैं। स्वेज नहर का जल रास्ता यूरोप को दक्षिण पूर्वी एशिया, आस्ट्रेलिया, अमेरिका तथा अफ्रीका से जोड़ता है यही कारण है कि पूर्व में कई दशको से इसकी पश्चिमी एशिया की राजनीत का केन्द्र बिन्दु बन जाने के कारण सभी विदेशी शक्तियां अमेरिका रूस और इंगलैड, इस पर अपना प्रभुत्व बढ़ाने का प्रयास करते रहे हैं।

सातवीं शताब्दी में जब इस्लाम का प्रचार प्रसार हुआ तब इसका प्रभाव मिस्र पर भी पड़ा क्योंकि मिस्र अफ्रीकी देश होते हुए भी मिस्र पश्चिमी एशिया के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सका था। 11 वीं शताब्दी में सलादीन ने इसे जीता और लगभग 4 शताब्दी तक उनके वंशजों ने उस पर शासन किया। 1517 ई0 में सुल्तान सलीम ने मिस्र को ऑटोमन साम्राज्य के आधीन कर दिया। जुलाई 1798 ई0 में नेपोलियन बोनापार्ट ने मिस्र पर फ्रांसीसी अधिपत्य स्थापित करने की कोशिश की

* [पी-एच.डी., अरब संस्कृति एवं सभ्यता] अरबी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

परन्तु 1802 ई0 में आमियां की संन्धि के फलस्वरूप वह अपना ऑटोमन सुल्तान को वापस कर दिया गया। नेपोलियन का यह आक्रमण आधुनिक मिस्र के निर्माण और आधुनिकी करण के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण था। यह इसलिए था क्योंकी नेपोलियन बोनापार्ट अपनी सेना के साथ अनेक विद्वान एवं वैज्ञानिक, दार्शिनिक कई महत्वपूर्ण लोगों को मिस्र लाया था। नेपोलियन ने तुर्की के सुल्तान के अधीन यहां के स्थानीय शासको को पराजित कर के कुछ सुधार भी किये थे। नेपोलियन बोनापार्ट के अधिपत्य को नष्ट करने के लिए ब्रिटेन, तुर्की की साझा सेनाएं मिस्र पहुंचीं लेकिन ब्रिटेन की सेना मिस्र में लम्बे समय तक नहीं टिक सकीं। उसी समय तुर्की सेना के कमाण्डर मेहमत अली ने स्थिति का फायदा उठा कर मिस्र का शासन अपने हाथों में ले लिया।

मेहमत अली ने अपने समय में मिस्र में अर्थिक संपन्नता लायी और पूरी तरह से उसका आधुनिकीकरण भी किया उसने पाश्चात्य विचारों को प्रश्रय दिया। उसने फ्रांसीसी विद्वानों द्वारा वाणिज्य, विज्ञान शिक्षा का इस प्रकार प्रबन्ध किया की उसका राज्य किसी भी आधुनिक यूरोपिय राज्य से पिछड़ा न रहे।[1] इस कार्य को करने के लिए उसे काफी संघर्ष करना पड़ा क्योंकि मिस्र उस समय अव्यवस्थित एवं छिन्न-भिन्न रूढ़िवादी एवं धर्म के इकाइयों में बटा हुआ था उसने अपने शासन काल में मिस्र को नई ज्योति प्रदान की मिस्र को पुनर्जागृत करने के लिए मेहमत अली ने देश व्यापी सुधार योजना के कार्यक्रम की शुरूआत की जिसके कारण मिस्र में एक नवीन युग का सूत्र-पात्र हुआ।[2] मेहमत अली ने अपनी बुद्धिमत्ता से मिस्र को इतना शक्तिशाली बना दिया की तुर्की का सुल्तान भी मेहमत अली से सहायता की अपेक्षा महसूस करने लगा था। मेहमत अली के देश व्यापी सुधार कार्यक्रम निम्न प्रकार हैं :

1. मेहमत अली ने अपने शासन काल में मिस्र को शक्तिशाली बनाने हेतु सैनिक शक्ति का विकास कर अपनी सेना का आधुनिकीकरण किया। एक फ्रांसीसी सेना अधिकारी कर्नल सीब्स ने सेना को पश्चिमी देशो की पद्धति पर प्रशिक्षित किया। इस फ्रांसीसी सेना अधिकारी ने मेहमत अली से प्रभावित होकर बाद में इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया। बाद में वहीं कर्नल सीब्स सुलेमान पाशा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन्होंने मिस्र की सेना का संगठन नवीन फ्रांसीसी आधार पर किया। मिस्र ने ग्रीक लोगों के स्वतन्त्रता युद्ध में तुर्की के सुल्तान की सहायता की थी। अतः तुकी के सुल्तान ने उसकी इस सहायता के बदले मे क्रीट का द्वीप उसे प्रदान कर दिया। किन्तु मेहमत अली इस पुरस्कार से प्रसन्न नहीं हुआ। उसने सीरिया पर अधिकार करने का भी निश्चय किया। 1820 ई0 में उसने सूडान पर आक्रमण किया और इस देश के उत्तरी प्रदेशों को जीतकर अपने अधीन कर लिया। 1831 ई0 में उसने अपने पुत्र इब्राहिम को सीरिया पर अधिकार करने हेतु भेजा। 1833 ई0 मे सीरिया पर इब्राहिम ने अधिकार स्थापित कर लिया और आठ वर्षो तक सीरिया पर इब्राहिम पाशा ने शासन किया 1840 ई0 लन्दन की संन्धि के कारण मेहमत अली की प्रगाति पर रोक लग जाने के कारण इस संन्धि के अनुसार तुर्की की राजधानी में रूस का प्रभाव स्थापित हो गया, इस संन्धि की वजह से तुर्की एक प्रकार से रूसी संरक्षण में आ गया था[3] इस संन्धि में तुर्की ने यह भी वादा किया था कि युद्ध के दौरान रूसी जहाज के अतिरिक्त अन्य सभी देशों के युद्धपोतों के लिए डाडर्नेल्स का जलडमरूमध्य बन्द रखा जायेगा। इस प्रकार इस संन्धि से कुस्तुन्तुनिया पर रूस का अधिकार हो गया। इग्लैण्ड और फ्रांस में इस संन्धि के कारण भय उत्पन्न हो गया। जिसके अनुसार दोनो देशों ने इसका विरोध किया क्योंकि वह इस संन्धि को नष्ट करना चाहता था ।
2. मेहमत अली ने अपने शासन काल में प्रशासकीय सुधार भी किये जिसके अर्न्तगत शासन को सुव्यवस्थिति करने के लिये एक नई शासन प्रक्रिया का निर्माण किया। इस प्रक्रिया के आधार पर शासन का विकेन्द्रीकरण किया गया जिसके अर्न्तगत मिस्र को सात प्रदेश में विभाजित कर दिया गया। शासन के इस विकेन्द्रीकरण के द्वारा ग्राम-प्रशासन को अधिक मजबूत एवं सुसंगाठित किया गया। सुसंगाठित करने हेतु मेहमत अली ने एक मंत्रिमण्डल के अन्तर्गत जल सेना, कृषि, वित्तीय, वाणिज्य, शिक्षा और आन्तरिक सुरक्षा के अलग-अलग मंत्रालयों का गठन किया। तथा प्रत्येक मंत्रालयों में एक नीति के तहत कार्य करता था।[4]
3. मेहमत अली अपने शासन काल में भूमि एवं सम्पत्ति सम्बंधी कार्य किये 1808 ई0 में पाशा ने मिस्र की जनता एवं सभी वर्गो की अधीनस्थ सारी भूमि का सर्वेक्षण कराया। सर्वे कराने से उसे ज्ञात हुआ कि मिस्र की बहुत सी जमीन नियम विरूद्ध तारीके से वहां के अधिकारियो के कब्जे में है तद्नुसार उसे अपने संरक्षण में ले लिया गया। इसको लेकर *हिट्टी* ने लिखा है कि, ''पाशा ने समस्त जागीरों का भी स्वतत्व छीन लिया और उसने स्वयं को देश का असली स्वामी घोषित कर दिया और उसने पूर्व की भू-धारण पद्धति को समाप्त कर दिया''[5] मेहमत अली ने धार्मिक संस्थाओं के अधीनस्थ भूमि को भी निरस्त कर उसका भी फिर से सर्वेक्षण कराया।
4. मेहमत अली ने अपने शासन काल में कृषि एवं सिंचाई सम्बंधी सुधार किया जिसके अन्तर्गत मिस्र में अनाज के निर्यात पर सरकारी एकाधिकार स्थापित किया। अरब क्षेत्र में यह राष्ट्रीयकरण का पहला प्रयास था। इसके साथ-साथ पाशा ने उद्योग एवं कृषि आधुनिक पद्धति के द्वारा अधिक उपयोगी बनाया सिंचाई प्रबंधन के द्वारा कृषि का उत्पादन बढाया एवं आधुनिक कृषि यन्त्रो का उपयोग कर खेतो को अत्यधिक उपजाऊ बनाया और दलदलों को सुखाकर, पुरानी नहरों को व्यवस्थिति करवाया साथ ही साथ नई-नई नहरो का निर्माण भी कराया। इन कार्यो द्वारा मिस्र को कृषि क्षेत्र में आधुनिक जीवन दान दिया। जिसके परिणाम स्वरूप आर्थिक सम्पन्नता आयी।[6]

5. मेहमत अली ने अपने शासन काल में शिक्षा के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया, क्योकि वह स्वयं अशिक्षित थे, इसलिए मिस्र में शिक्षा के विस्तार हेतु अलग से शिक्षा मंत्रालय स्थापित किया। इस मंत्रालय का प्रमुख कार्य देश में प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चतर शिक्षा में उन्नति करना था। शिक्षा का आधुनिकीकरण हेतु पश्चिमी शिक्षा पद्वति पर आधारित अभियांत्रिकी, चिकित्सा-शास्त्र, साहित्य एवं अन्य विद्यालय की स्थापना की गई। इन विद्यालयो में ज्यादातर शिक्षक यूरोप के होते थे, इस प्रकार मिस्र में शैक्षिक क्रान्ति का उद्‌भव हुआ जिसके परिणाम स्वरूप मिस्र की रूढवादी, अंधविश्वासी जनता को एक नवीन सृजनात्मक चेतना का ज्ञान हुआ।[7]
6. मेहमत अली के शासन काल में मिस्र में छापाखानों में भी सुधार हुआ। 1833 ई0 में एक बहुशिल्प संस्थान मिस्र के शिक्षकों की सहायता से स्थापित किया। विद्यालयों की पुस्तकों के लिए सरकारी छापाखाना 'बुलाक' में स्थापित किया गया। छापाखानों को स्थापित करने का यह विचार मेहमत अली के दिमाग में नेपोलियन बोनापार्ट के द्वारा आया। नेपोलियन ने बेतिकान के युद्व में अपनी प्रसिद्वी के प्रचार के लिए छापाखाना फ्रांस से लेकर आया। बुलाक छापेखाने में वर्ष 1822-1842 ई0 के मध्य लगभग 243 पुस्तकों का प्रकाशन किया जो पाठ्य पुस्तकें ही थी। 1828 ई0 में मिस्र में पहली बार एक समाचार पत्र 'अल-बकाई-अलामियां' (दैनिक घटनाये) नामक समाचार-पत्र प्रकाशित किया।
7. मेहमत अली के शासन काल में व्यापार एवं वाणिज्य सम्बंधी सुधार हुये जिसके तहत भूमि-कर वृद्धि के साथ ही साथ अपना ध्यान व्यापार की ओर भी गया। इस उद्‌देश्य से उसने अनाज, चीनी, नील आदि के निर्यात पर सरकारी एकाधिकार स्थापित कर दिया। सभी व्यापारों का कार्य उसने अपने अधिकार में कर लिया। नवीन औद्योगिक चेतना का मिस्र में भी संचार किया गया। सर्वप्रथम वस्त्र-उद्योग संयत्र आयात किया गया। चीनी के उत्पादन का एक कारखाना भी इस समय स्थापित किया गया परन्तु निपुण शिक्षा, तकनीकी ज्ञान तथा कोयले और लोहे आदि खनिज पदार्थ के आभाव के कारण पाशा का मिस्र को आधुनिक उद्योग पदार्पण करवाने का सपना साकार करने में अत्यन्त कठिनाई उत्पन्न होने लगी।[8]
8. मेहमत अली ने अपने शासन काल में राज्य विस्तार के सम्बंध में गहराई से विचार कर अपने देश की आन्तरिक आर्थिक एवं सैनिक शक्ति को सुसंगठित करने के पश्चात् अपने साम्राज्य का विस्तार करने का प्रयत्न किया। उसकी इस राज्य विस्तार की योजना में उसके पुत्र इब्राहिम पाशा ने विशेष सहयोग दिया उसने सबसे पहले हिजाज को मिलाने के लिये अपने पुत्र इब्राहिम पाशा के नेतृत्व में एक सेना भेजी। हिजाज पर नेपोलियन के युद्वों के समय इब्न-सऊद के वंशजों ने अधिकार कर लिया था। यह मक्का के तीर्थ स्थान में आने वाले तीर्थ-यात्रियों पर रोक लगाकर परेशानी उत्पन्न करते थे। 1818 ई0 में इब्राहिम ने हिजाज को अपने अधिकार में लेकर इथियोपिया को भी मिस्र के अधीन कर लिया। मेहमत अली ने इस पर इब्राहिम को हिजाज और इथियोपिया का राज्यपाल नियुक्त किया। 1820 ई0 में मेहमत अली के एक अन्य पुत्र इसमाइल ने आधुनिक खारतूम नगर की नींव रखी।[9]

निष्कर्ष

मेहमत अली के 40 वर्षो के शासन काल में न केवल मिस्र का आधुनिकीकरण हुआ बल्कि मिस्र ने आर्थिक क्षेत्र में अपूर्व प्रगति की थी। उसके द्वारा किये गये सुधार कार्यो के कारण ही उसे आधुनिक मिस्र का पिता कहा जाता है। इस पर हिट्‌टी ने लिखा है कि, ''मेहमत अली ने स्वयं एक बार देश की समीक्षा करते हुए कहा था कि उसने मिस्र देश को अत्यन्त बर्बर एवं असभ्य पाया। परिणाम स्वरूप देश के उत्थान एवं उन्नति हेतु आधुनिक सुधार के कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करने की चेष्टा की। यह सत्य है कि मेहमत अली ने भविष्य के आधुनिक मिस्र का शिलान्यास किया तथा ऐसे युग का सूत्रपात किया, जो मिस्र के इतिहास में अविस्मरणीय है। मेहमत अली केवल मिस्र का निर्माता ही नही वरन् मिस्र को नव जीवन, नव चेतना एवं आत्मबोध कराने वाला प्रेरणा सोत्र था।

संदर्भ ग्रथ सूची

[1] केटलवी, सी.डी एम -ए हिस्ट्री आफ मार्डन टाइम्स फ्राम 1989 (हिन्दी अनुवाद), पृष्ट संख्या 240
[2] बी.एम रियाफत -दि अवेकनिंग आफ ईजिप्ट, लन्दन 1947, पृष्ट संख्या 27
[3] मेरियट, जे.ए.आर -इस्टर्न क्वेश्चन, पृष्ट संख्या 235
[4] कौल, के.के -पश्चिमी ऐशिया 1991, पृष्ट संख्या 146
[5] हिट्‌टी, फिलिप के. -द नियर ईस्टइन हिन्दी न्यूयार्क 1961, पृष्ट संख्या 432
[6] हिट्‌टी -वही, पृष्ट संख्या 432
[7] कौल के.के -पश्चिमी ऐशिया 1991, पृष्ट संख्या 148
[8] कौल के.के -वही, पृष्ट संख्या 149
[9] कौल के.के -वही, पृष्ट संख्या 149-150

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,60-63**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 जनवरी 2014

मौलिक सिद्धान्तों की पंचकर्म में उपादेयता

दिनेश कुमार मीना* एवं रानी सिंह**

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मौलिक सिद्धान्तों की पंचकर्म में उपादेयता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखक दिनेश कुमार मीना एवं रानी सिंह घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

सारांश

आयुर्वेद के अनुसार चिकित्सा कर्म में रोगोपचार के निमित्त दो चिकित्सा क्रम निर्दिष्ट है। प्रथम संशोधन तथा द्वितीय संशमन चिकित्सा। इनमें प्रथम संशोधन चिकित्सा में पॉच चिकित्सोपक्रम व्यवहृत होते हैं जिससे की शरीरगत दूषित दोषों को बाहर निकालकर शरीर का संशोधन किया जाता है। संशोधन चिकित्सा में निर्दिष्ट पंचकर्म चिकित्सा उपक्रम में वमन, विरेचन, शिरोविरेचन, आस्थापन एवं अनुवासन ये पाँच कर्म परिगणित होते हैं सम्प्रदाय के अनुसार इसमें थोड़ी भिन्नता पाई जाती है। सुश्रुत के अनुसार यह क्रम वमन विरेचन शिरों विरेचन वस्ति एवं रक्त मोक्षण बताया गया है, क्योंकि सुश्रुत शल्य प्रधान ग्रन्थ है। पंचकर्म चिकित्सा करते समय चिकित्सक को निदान, दोष धातुमल सम्प्राप्ति एवं चिकित्सोपाय का ज्ञान होना आवश्यक है ज्ञान शास्त्रोक्त मौलिक सिद्धान्तों पर आधारित होता है इसलिये चिकित्सक को मौलिक सिद्धान्त का पूर्ण ज्ञान होना अति आवश्यक है ।

प्रस्तावना (आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त)

जिस प्रकार मूल के आधार पर ही सम्पूर्ण वृक्ष का कलेवर आश्रित रहता है उसी प्रकार समग्र आयुर्वेद वाङ्मय भी इसके मूल सिद्धान्तों पर ही आधारित है। सिद्धान्त को परिभाषित करते हुए आचार्य चरक ने कहा है कि, ''सिद्धान्तों नाम स यः परीक्षकैर्बहुविधं परीक्ष्य हेतुभिश्च साधयित्वा स्थाप्यते निर्णयः।'' सिद्धान्त वह निर्णय है जो अनेक परीक्षकों द्वारा अनेक बार परीक्षा करके और विभिन्न हेतुओं द्वारा सिद्ध कर स्थापित किया जाता है उनमें प्रमुख निम्न है; 1. त्रिगुण सिद्धान्त, 2. पंचमहाभूत सिद्धान्त, 3. त्रिदोष सिद्धान्त, 4. षड्पदार्थ वाद सिद्धान्त, 5. सामान्य विशेष सिद्धान्त, 6. सप्त धातु एवं ओज सिद्धान्त।

* रेजिडेंट (सिद्धान्त दर्शन विभाग) [चिकित्सा विज्ञान संस्थान] काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : dinesh4ubhu@gmail.com
** असिस्टेंट प्रोफेसर, सिद्धान्त दर्शन विभाग [चिकित्सा विज्ञान संस्थान] काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

पंचकर्म में वर्णित चिकित्सकीय पुरुष

आयुर्वेद एक प्राचीनतम ग्रन्थ है जिसके अन्तर्गत षड्धात्वात्मक पुरुष का विवरण मिलता है महर्षियों ने इस पुरुष को चिकित्स्य पुरुष तथा कर्म पुरुष की संज्ञा दी है।

खादयश्चेतनाषष्ठा धातवः पुरुष स्मृतः (च.शा 1/16) आकाशादि पंचमहाभूत तथा आत्मा अर्थात चेतना इनके संयोग को षड्धात्वात्मक पुरुष कहते हैं चरकोक्त चतुर्विशति पुरुष तथा सुश्रुतोक्त पंचर्विशति पुरुष का समावेश भी षड्धात्वात्मक पुरुष में होता है।

1. *त्रिगुण सिद्धान्तः* त्रिगुणः सत्व, रज, तम यह मूल प्रकृति के गुण हैं किन्तु रज तम जब विषमावस्था को प्राप्त करते हैं तब वे दोष कहे जाते हैं। ये दूषित दोष मन के साथ शरीर को भी प्रभावित करते हैं तो इनमें से जिन गुणों का गर्भोत्पत्ति के समय प्राबल्य रहता है उसी के अनुसार मानसिक प्रकृति बनती है तथा चिकित्सा करते समय रुग्ण के शरीर बल के साथ मानसिक बल का भी ज्ञान आवश्यक हैं अतः सत्व, रज तम गुणों के सामान्य लक्षण बढ़ने पर उत्पन्न होने वाले लक्षण इन सबके ज्ञान के लिए त्रिगुण सिद्धान्त का ज्ञान होना जरूरी है ।
2. *पंचमहाभूत सिद्धान्त :* पंचमूत सिद्धान्त एक सर्वसम्मत अविरूद्ध सिद्धान्त है यह आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान का आधार स्तम्भ है। जो द्रव्यों के विभिन्न गुण, कर्म स्वभाव एवं अवस्था आदि को देखकर सृष्टि विकार की स्वभाव सिद्ध परंपरा का निरीक्षण कर लोकानुभूत सूक्ष्म भूतों के विविध कार्यों का अवलोकन कर सूक्ष्म स्तर पर भारत के प्राचीन कालीन महर्षियों ने प्रतिपादित किया है। 'महाभूतानिखं वायुरग्निऽपाः क्षितिस्तथाः।'(च0शा0 1); 'शब्द स्पर्श.....तद्गुणाः।।'

पंचमहाभूत-आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी यह पंचमहाभूत हैं तथा शब्द, स्पर्श रूप, रस, गंध क्रमशः इनके गुण हैं। आयुर्वेदानुसार सृष्टि भी पांच भौतिक है तथा सृष्टि के सभी घटक अर्थात् मानव शरीर भी पांचभौतिक है सृष्टि में उत्पन्न होने वाले सभी पॉच भौतिक द्रव्यों का प्रभाव शरीर पर होता है। पंचकर्म चिकित्सा करते समय, पंचभौतिक सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर चिकित्सा की जाती है।

पंचकर्म-वमन, विरेचन, बस्ति, नस्य रक्तमोक्षण करते समय द्रव्यों का चयन पंचभौतिक संगठनानुसार ही किया जाता है। जैसे-विरेचन कर्म करते समय पृथ्वी तथा जल महाभूत प्रधान द्रव्यों का चयन किया जाता है। पृथ्वी तथा जल गुरू गुणात्मक है। अतः भारीपन के कारण अधोगामी होते हैं, और अधोमार्ग से दोषों का निःसरण होता है अग्नि तथा वायु लघु स्वभाव के हैं। लघुत्व के कारण ये ऊर्ध्वगामी होते हैं, इस कारण ऊर्ध्वमार्ग से दोषों का निर्हरण होता है।

3. *त्रिदोष सिद्धान्त :* त्रिदोष से आयुर्वेद वाङ्मय में वात, पित्त, कफ, इन तीन शारीरिक दोषों को ग्रहण किया जाता है जो साम्यावस्था में शरीर स्वास्थ्य की रक्षा करते हैं या विकृतावस्था में नानाविध विकारों की उत्पत्ति के कारण होते हैं रचना शरीर के मूलउपादान पंचभूत हैं ''सर्वद्रव्यं पंचभौतिकम्'' तथा क्रिया शरीर के मूल त्रिदोष हैं ''दोषधातु, मल मूलं हि शारीरम्।''

आयुर्वेद के मतानुसार त्रिदोष भी पंचभौतिक हैं वात-वायु, आकाश महाभूत प्राधान्य, पित्त-तेज (अग्नि) महाभूत प्राधान्य कफ-जल व पृथ्वी महाभूत प्रधान है।

शरीर की समस्त क्रियायें त्रिदोष निहित गुणों के आधार पर होती हैं तीनों एक दूसरे के पूरक हैं लेकिन जब इनमें वैषम्य आता है तो व्याधि उत्पन्न होती है।

त्रिदोष सिद्धान्त की रोगोपचार में उपयोगिता : चिकित्सा के आधारभूत सिद्धान्तों में से एक महत्वपूर्ण त्रिदोष सिद्धान्त है त्रिदोष के आधार पर ही चिकित्सा की जाती है। त्रिदोष के आधार- जैसे व्याधि में कौन से दोष की वृद्धि हुई। किस दोष का क्षय हुआ तथा व्यक्ति अर्थात् रोग की प्रक्रिया क्या है इसका विचार करके अर्थात् त्रिदोषों की स्थिति का विचार करके चिकित्सा की जाती है।

पंचकर्म चिकित्सा में त्रिदोषों की उपादेयता : त्रिदोष के आधार पर पंचकर्म क्रिया की सिद्धि आश्रित हैं; जैसे कफ दोष की वृद्धि हो तथा इसका संशोधन करना हो तो वमन कर्म करना चाहिए। पित्त दोष की वृद्धि हो तो विरेचन द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए।

वात दोष की वृद्धि हो तो वस्ति कर्म द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए। स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ की रक्षा हेतु ऋतु के अनुसार भी पंचकर्म चिकित्सा का विधान है।

4. *षड्रसवाद सिद्धान्त :* आयुर्वेद में मधुरादि षड्रसों की मान्यतादी है मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त एवं कषाय इन रसों का अपने-अपने गुणों के माध्यम से शरीर पर प्रभाव होता है और चिकित्सा करते समय उन उन रसात्मक द्रव्यों का चयन किया जाता है ।

संशोधन चिकित्सा में षड्रसवाद की उपादेयता

शरीर के स्वास्थ्य रक्षा के निमित्त ऋतुओं के अनुसार संचित दोषों के निर्हरण के लिए संशोधन कर्म का विधान आयुर्वेदज्ञों ने प्रतिपादित किया है। वमन, विरेचन तथा बस्ति कर्म के लिए प्रयुक्त द्रव्यों का चयन रसों के आधार पर किया जाता है, जैसे- अग्निवायात्मक कटु एवं तिक्त रस अपने लघु तथा गतिशीलता के कारण प्रायः ऊर्ध्वगामी होते हैं। अतः वामकद्रव्य प्रायः कटुतिक्त रसवाले होते हैं। परिणामतः वमन कार्य के लिए कटु, तिक्त रस वाले द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है जैसे मदनफल

विरेचन कार्य के लिए सलिलपृथ्व्यात्मक, मधुर, अम्ल रस वाले द्रव्यों का प्रयोग अपेक्षित होता है क्योंकि सलिलपृथ्व्यात्मक मधुर, अम्ल रस अपनी गुरूता तथा द्रवता स्वभाव के कारण अधोगामी होते हैं जैसे त्रिवृत। इसी प्रकार वस्तिकर्म के लिए प्रयुक्त द्रव्य मुधर, अम्ल लवण रस वाले होते है। जिससे कि संचित वात का निर्हरण होकर वातदोष का अनुलोमन हो सके। इस प्रकार संशोधन कर्म में षड्रसवाद सिद्धान्त की उपादेयता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

पंचकर्म सिद्धान्त

संशोधन कर्म में पॉच चिकित्सोपक्रम व्यवहृत होते हैं जिससे कि शरीरगत दूषित दोषों को बाहर निकालकर शरीर का संशोधन किया जाता है। संशोधन चिकित्सा में निर्दिष्ट पंचचिकित्सोपक्रम में वमन, विरेचन, वस्ति शिरोविरेचन एवं रक्तमोक्षण ये पाँच कर्म वर्णित होते हैं वमन तथा शिरेविरेचन, कर्म से प्रकुपित कफ दोषों का निर्हरण, विरेचन कर्म से प्रकुपित पित दोष का निर्हरण एवं आस्थापन एवं अनुवासन वस्ति से वातदोष का संशमन होता है। शरीर के संशोधन के पश्चात अनेक रोग जो कि स्त्रोतों अवरोध के कारण उत्पन्न होते हैं स्वयमेव शांत हो जाते हैं एवं शरीर का धातु साम्य पुनः स्थापित होता है जिससे व्यक्ति स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करता है। ''वसन्ते निचितः.....वमनादीनि कारयेत्।''(च. सू.5/22-23)।

अर्थात् हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में शीताधिक्य तथा गुरू, मधुर, स्निग्ध भोजन से शरीर में कफ संचित होता है। वही संचित कफ सूर्य की क्रमशः तीक्ष्ण होती हुई किरणों से वसंत ऋतु में कुपित होकर जठराग्नि को बाधित करता है अर्थात् इसकी क्रिया में मंदता उत्पन्न करता है। जिससे कि शरीर में अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अतः वसन्त ऋतु में संचित कफ को निकालने के लिए वमन आदि कर्मो का विधान कराना चाहिए। यहां पर वमन आदि कर्मो से अभिप्राय है कि वसन्त ऋतु आदान काल का मध्य है अतः यदि इस काल में वातपित्त दोषों का प्रकोप हो तो वस्ति कर्म तथा विरेचन कर्म का भी विधान करना चाहिए। इसके अतिरिक्त शिरोविरेचन कर्म का भी निष्पादन अपेक्षित है इसी प्रकार शरद ऋतुचर्या में आचार्य चरक ने ग्रीष्म में संचित पित्त दोष का निर्हरण करने के निमित्त विरेचन कर्म करने का निर्देश किया गया है; जैसे कि वर्षा ऋतु के व्यतीत हो जाने पर तिक्तवर्ग की औषधियों से साधित घृत का पान विरेचन कर्म एवं रक्तमोक्षण कर्म में करना चाहिए। इसके अतिरिक्त वातदुष्टि व वात वृद्धि की स्थिति में वातानुलोमन एवं बढ़े हुए वात के लिए वस्ति कर्म का विधान बतलाया गया है। (च.सू.5/4)

निष्कर्ष

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि वमन, विरेचन तथा बस्ति कर्म क्रमशः कफ, पित एवं वात निर्हरण में सर्वश्रेष्ठ उपक्रम है। शारीरगत दोष संशोधन के अतिरिक्त पंचकर्म का विधान अनेक रोगों के संशमनार्थ भी किया गया है। रसायन से पूर्व व्यक्ति के शरीरगत दोषों का

संशोधन कर उसे बल की प्राप्ति कराकर पुनः रसायन द्रव्यों का प्रयोग करें। पंचकर्म चिकित्सा मन एवं शरीर की शोधन विधियाँ है इनके द्वारा प्रदूषित वातावरण एवं तीक्ष्ण औषधियों से उत्पन्न विषाक्तता एवं एलर्जी जैसे विकारों से स्थायी निजात मिलती है। इनके प्रयोग से मनुष्य अपना शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक व बौद्धिक शुद्धिकरण करते हुए समग्र स्वास्थ्य की ओर उत्थान करता है; चूँकि रोग प्रतिरोधक शक्ति को पंचकर्म एवं रसायन चिकित्सा द्वारा बढाया जा सकता है, इसलिये जटिल एवं गंभीर रोग प्रबंधन हेतु आयुर्वेद की यह चिकित्सा विधि अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शरीर में एकत्रित अतिरिक्त चर्बी एवं वसा आदि इन शोधन क्रियाओं के द्वारा अत्यन्त कम या समाप्त हो जाती है मोटापा जन्म-जात रोग जैसे गठिया, हृदयरोग तथा प्रमेह आदि स्वतः ही धीरे-धीरे समाप्त हो जाते है ।

सन्दर्भ सूची

श्री सत्यनारायण शास्त्री (2005) -*चरक संहिता (प्रथम भाग),* चौखम्भा भारती अकादमी वाराणसी

श्री सत्यनारायण शास्त्री (2009) -*चरक संहिता (द्वितीय भाग),* चौखम्भा भारती अकादमी वाराणसी

कविराज डॉ0 अम्बिका दन्त शास्त्री (2012) -*सुश्रुत संहिता (प्रथम भाग),* चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी

डॉ रविदन्त त्रिपाठी (2001) -*अष्टाङ्गसंग्रहः (सूत्रस्थान),* चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

डा0 लक्ष्मीधर द्विवेदी (2010) -*आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त एवं उनकी उपादेयता (प्रथम भाग),* चौखम्बा कृष्णदास अकादमी वाराणसी

डा. बी.के. द्विवेदी (सम्पादक) एवं डा. लक्ष्मीधर द्विवेदी (2007) -*पदार्थ विज्ञान,* चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी,

प्रो0 रामहर्ष सिंह -*दी होलीस्टिक प्रिंसिपल ऑफ आयुर्वेदिक मेडीसिन,* चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,64-74**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 फरवरी 2014

रेहन पर रग्घू में परिवर्तित पारिवारिक सम्बन्ध

अंजू बाला*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *रेहन पर रग्घू में परिवर्तित पारिवारिक सम्बन्ध* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंजू बाला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

भूमण्डलीकरण के इस दौर में सम्बन्ध में प्रेम, आदर-सम्मान के स्थान पर लाभ-लोभ की पद्वति बढ़ती जा रही है। पारिवारिक सदस्यों के बीच जो एक भावात्मक मधुर सम्बन्ध हुआ करता था, वह अब समाप्त होता जा रहा है। मनुष्य व्यक्ति विकास की दृष्टि से जहाँ एक ओर ऊँचाइयों पर पहुँचता नजर आ रहा है, वहीं वह दूसरी ओर वह अपनी पारिवारिक जड़ों से कटता जा रहा है। 'रेहन पर रग्घू' में रघुनाथ का परिवार भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व करता है, जिसके माध्यम से भारतीय समाज के पारिवारिक सम्बन्धों में उभरते परिवर्तनों को अभिव्यक्त किया गया है। परम्परागत रागात्मक सम्बन्धों का भाव किन भयावह परिणामों को जन्म दे रहा है, इन सभी की सफल अभिव्यक्ति इस उपन्यास में हुई है।

'रेहन पर रग्घू' प्रख्यात कथाकार काशीनाथ सिंह द्वारा रचित एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में भारतीय समाज में हो रहे पारिवारिक सम्बन्धों के बदलावों को उद्घटित किया गया है जो वर्तमान युग की वास्तविकता को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। परिवार हमारे सामाजिक जीवन का मूलाधार है। परिवार में व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा समस्त सामाजिक सम्बन्धों का विकास होता है। इस प्रकार परिवार समाज की अत्यन्त महत्वपूर्ण इकाई है।

प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी उपन्यास

परिवार के पारंपरिक आदर्श हिन्दी उपन्यास की प्रारम्भिक प्रेरणा सामाजिक रही। सामाजिक समस्याओं का आध्ययनात्मक विवेचन ही प्रांरम्भिक हिन्दी उपन्यास का मुख्य उद्देश्य रहा। इन उपन्यासों की मूल दृष्टि 'सुधारवाद' रही। उनकी दृष्टि में सुधार का अर्थ था- परिवर्तन के क्रम को रोककर सामाजिक सम्बन्धों और समाज संस्थाओं के पांरपरिक स्वरूप को यथावत रखना। प्रेमचन्द-पूर्व युग की धारा का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रमुख उपन्यासकार थे- श्रीनिवासदास, बालकृष्ण भट्ट, लज्जाराम मेहता, किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी इत्यादि। श्रद्धाराम फिल्लौरी का 'भाग्यवती' (1877ई0), श्री निवासदास का 'परीक्षागुरू'

* [एम.फिल. हिन्दी] दिल्ली विश्वविद्यालय (दिल्ली) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

(1882ई0), बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी' सन् (1886ई0) तथा 'सौ सुजान एक अजान' (1892ई0), किशोरलाल गोस्वामी के 'स्वीर्गीय कुसुम' 'नीलावर्ता व आदर्श सती' 'पुनर्जन्म का सौतिया डाह' इत्यादि लज्जाराम मेहता के 'स्वतन्त्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' (1899ई0), 'आदर्श दम्पत्ति (1907ई0), 'बिगड़े का सुधार' (1907ई0), अथवा 'सती सुखदेवी' 'सुशीला', 'विधवा' गोपालराम गहमरी के 'सास-पतोहू' 'देवरानी-जिठानी', 'डबल बीबी' इत्यादि ऐसे ही उपन्यास हैं जिनमें परिवार के पारंपरिक रूप को ही तरजीह दी गयी है। परिवार में आ रहे परिवर्तनों को इन लेखकों ने उचित नहीं माना तथा पुराने मूल्यों का प्रतिपादन ही इनका मुख्य ध्येय रहा।

प्रेमचन्द-पूर्व युग के उपन्यासों में पारिवारिक चित्रण की सबसे बड़ी परिधि तो है- सम्बन्धों का सीमित दायरा। इन उपन्यासों का कथावृत्त घर की चाहरदीवारी के सारे सम्बन्धों को भी नहीं समेट पाता। इन उपन्यासों में उच्च मध्यवर्ग एवं मध्यवर्ग के जीवन का ही चित्रण हुआ है। किस्सागो शैली में लिखे गये ये उपन्यास इन दो वर्गो के पारिवारिक तथा परिवार-बाध्य जीवन की ही छवियाँ उभारते हैं। निम्नवर्ग के परिवार, जीवन और परिस्थितियों पर हो रहे परिवर्तनों का इन उपन्यासों में कोई चित्रण नहीं हुआ है। वस्तुतः प्रेमचन्द-पूर्वयुग के उपन्यसकारों की दृष्टि उनके अपने या अपने से ऊँचे वर्ग तक ही सीमित रही है। उनके अपने सामाजिक स्तर से नीचे स्थित निम्नवर्ग के लोगों में धीरे-धीरे बह रही प्रगति की अंतधारी को पहचानने और उसे प्रखर अभिव्यक्ति देने में वे सर्वथा विफल रहे।

प्रेमचन्द का रचना-काल : निर्णायक परिवर्तन का युग

प्रेमचंद के 'सेवा सदन' (1918ई0), का प्रकाशन हिन्दी उपन्यास में एक युगांतकारी घटना थी। यह एक ऐसे युग के आरम्भ का संकेत था, जिसमें उपन्यास काल्पनिकता की उड़ानों का मोह छोड़कर जीवन के प्रत्यक्ष और वास्तविक अनुभवों, सम्बन्धों, समस्याओं, चुनौतियों से साक्षात्कार करने वाला था। प्रेमचंद के आविर्भाव का युग भारतीय समाज में अत्यंत निर्णायक परिवर्तनों, प्रवृत्तियों, धाराओं और प्रेरणाओं की क्रियाशीलता का युग था। एक ऐसा युग, जब उन्नीसवीं सदी में आरम्भ हुआ भारत का नवजागरण धीरे-धीरे परिपक्व हो चला था। वह बौद्धिकता और उच्चवर्ग तक सीमित रहने के प्रांरभिक बंधनों को तोड़कर जन-जागरण का रूप ले रहा था। नवजागरण का जन-जागरण में रूपांतरण कई स्तरों पर घटित हो रहा था। राजनीति में वह महात्मा गांधी के रूप में भारतीय राष्ट्रवाद के युग-पुरूष के प्रादुर्भाव से लक्षित हुआ, तो सांस्कृतिक क्षेत्र में यह रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा शान्ति निकेतन की स्थापना का युग था। उधर सम्पूर्ण भारतीय समाज एक नवीन-चेतना से झंकृत हो रहा था। वह परंपरा और आदर्शो के प्रति पहले से कहीं अधिक वैज्ञानिक दृष्टि अपना रहा था। शताब्दियों के बाद देश का सामाजिक विवेक जागृत हुआ था और उसके प्रकाश में पारंपरिक मूल्यों, सामाजिक स्थितियों, सम्बन्धों की विषमताओं और रूढ़ियों-कुरीतियों की बेड़ियों को तोड़ा।

प्रेमचन्द पारिवारिक जीवन एवं उसके महत्व से परिचित थे। उन्होने अपने उपन्यासों में पारिवारिक जीवन एवं उसकी समस्याओं को उद्घाटित किया है। संयुक्त परिवार के विघटन की प्रक्रिया को भी उन्होंने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है- संयुक्त परिवार प्राचीन काल से ही हिन्दू समाज व्यवस्था का आधारस्तम्भ रहा है। प्रेमचन्द-युग में औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था के विकास के कारण समाज का पूरा आर्थिक ढाँचा बदल गया था, साथ ही दूसरी ओर पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित नवयुवक वैयक्तिक स्वार्थ को प्रमुखता देने लगे थे। इन परिस्थितियों में संयुक्त परिवारों का विघटन होना निश्चित एवं अनिवार्य था। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में संयुक्त परिवार के विघटन का चित्रण करते हुए उन परिस्थितियों एवं कारणों पर भी प्रकाश डाला है जो इस प्रथा के विघटन के लिए उत्तरादायी है। संयुक्त परिवार के विघटन का चित्रण प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रम 1922 उपन्यास में हुआ है। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास के लाला प्रभाशंकर और उनके भाई के पुत्र ज्ञानशंकर का संयुक्त परिवार है जब तक प्रभाशंकर के बड़े भाई जटाशंकर जीवित थे तब तक भाइयों के पारस्परिक प्रेम के कारण कभी पारिवारिक कलह नहीं हुआ। जटाशंकर की मृत्यु के बाद उनका पुत्र ज्ञानशंकर नित्य किसी न किसी बात को लेकर अपने चाचा से झगड़ा किया करता है। वास्तव में वह अलग हो जाना चाहता है प्रभाशंकर पारावारिक मान-मर्यादा की रक्षा के लिए सदैव प्रत्यनशील रहते है, लेकिन ज्ञानशंकर उनका विरोध करता है। ज्ञानशंकर और प्रभाशंकर के जीवनादर्श में महान वैशम्य है। अतः प्रभाशंकर के चाहने पर भी संयुक्त परिवार का अधिक दिनों तक बने रहना कठिन हो जाता है।

'प्रेमाश्रम' में ज्ञानशंकर के वैयक्तिक स्वार्थ के कारण संयुक्त परिवार टूटता है। लाला प्रभाशंकर के परिवार में तीन पुत्र, दो पुत्रियां, एक पुत्रवधू तथा पति-पत्नी है। फलस्वरूप इलाके की आय का अधिकांश भाग उनके परिवार पर व्यय होता है। ज्ञानशंकर इसे सह नहीं पाता। अतः द्वेश और दम्य के आवेग में वह अपव्यय करता है। ज्ञानशंकर की इस स्वार्थ भावना को प्रभाशंकर की पत्नी ताड़ लेती है और जब वह इसका विरोध करती है तो ज्ञानशंकर को अलग हो जाने को बहाना मिल जाता है। ज्ञानशंकर के सन्दर्भ में प्रेमचंद ने स्पष्ट कर दिया है कि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त नवयुवकों में वैयक्तिक स्वार्थ की भावना प्रबल होती जा रही है। अतः वे अपने निकटतम सम्बन्धियों के साथ रहकर सुख-दुख झेलने की अपेक्षा केवल अपनी पत्नी और बच्चों के पोषण का ही भार उठाना चाहते हैं। ज्ञानशंकर की स्वार्थी प्रवृत्ति के लिए प्रभाशंकर उसकी शिक्षा को उत्तरादायी ठहराते हैं। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित नवयुवक व्यक्तिगत हितों पर ही बल देते है, इसलिए उनके हदय में संयुक्त परिवार को बनाये रखने के लिए विशेष आग्रह नहीं है।

इस प्रकार प्रेमचंद युग के उपन्यासों से ही संयुक्त परिवार में विघटन होने लगा था और उसके कारण परिवारिक सम्बन्धों में बदलाव भी आने लगे।

'रेहन पर रग्घू' में परिवर्तित पारिवारिक सम्बन्ध

संयुक्त परिवारों के विघटन के साथ-साथ आज महानगरों की स्थिति ऐसी है जहाँ एकल परिवार है जिसमें एक बेटी, दो बेटे, शीला-रघुनाथ है सब मिलाकर पाँचों सुखी नहीं था। उदारीकृत नई-अर्थव्यवस्था ने मनुष्यों को अर्थ के नजरिए से बेहद लुभावना वातावरण उपलब्ध कराया है। शहरों एवं विदेशों में अधिक सुविधाएं जैसे नौकरी के अधिक अवसर, शिक्षा की व्यापक सुविधाएं उच्च जीवन स्तर और ग्रामीण क्षेत्रों में अपेक्षित साधनों का अभाव, बेरोजगारी, कृषि पर अतिरिक्त भार, कृषि के प्रति अरूचि जाति, धर्म के बंधन आदि ऐसे कारक है, जिनकी वजह से लोग गाँवों को छोड़कर शहरों एवं विदेशों की तरफ अग्रसर होने लगे है।

कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में संयुक्त परिवार सफल थे किन्तु नगरीय औद्योगिक अर्थव्यवस्था ने संयुक्त परिवार के अस्तित्व को संकट में डाल दिया है। इस कारण आज एकल परिवार स्थापित होते जा रहे हैं। नगरीय समाज में गतिशीलता, भौतिक चेतना तथा व्यक्तिवादिता के कारण नवीन पारिवारिक ढाँचे का विकास हुआ है। व्यक्ति को व्यक्तिवादी नितांत स्वार्थी बना देती है। वह अपने चारों ओर अपने स्वार्थ, अपनी इच्छाओं का ऐसा घेरा बना लेता है, जिसमें वह अकेला रहता है, किसी कार्य को उसे कैसे करना है इसका निर्णय वह स्वयं अपनी सुविधानुसार करता है।

यह उपन्यास भूमण्डलीकरण के दौर में लिखा गया है।

भूमण्डलीय सोवियत संघ के विघटन के बाद 1991 में यह शब्द व्यापक रूप से प्रचार में आया। विश्व के बड़े और राष्ट् जिनका अगुवाई अमेरिका करता है। उसके केन्द्र ने सर्वजन हिताय की भावना थी लेकिन आज मल्टीनेशनल कम्पनी और बड़े राष्ट्रों के स्वार्थ सिद्धि तक सीमित हो गया है।

भूमण्डलीयकरण के इस दौर में लोगों की आवश्यकताएँ बढ़ गई है, जीवन स्तर ऊँचा उठ गया है। उस स्तर को कायम रखने के लिए कमाने की आवश्यकता बढ़ गयी है। घर के काम-काज घर के बाहर होने लगे है। इससे पारिवारिक सम्बन्ध दिनों-दिन संकटगस्त हो चले हैं। इस प्रकार इस वातावरण में आर्थिक लाभ कमाना ही व्यक्ति का एकमात्र उद्देश्य रह गया है। हर सम्भव तरीके से पैसा कमाने के प्रयास में व्यक्ति की सोच अर्थ प्रधान हो गई है। इसके फलस्वरूप आज जब प्रत्येक व्यक्ति कमाने लगा है तो यह कोई नहीं चाहता कि अपनी कमाई दूसरों पर खर्च करे। व्यक्तिवादी भावना के कारण हर एक अपने पैसे का अपने घर खर्च करना चाहते है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हो रहा है कि परिवार के सदस्य एक साथ नहीं रहना चाहते। परिवार के विभिन्न सदस्यों के मध्य स्थापित प्रेम, आदर जैसी भावनाओं पर आधारित न होकर बुद्धि तर्क तथा अर्थ द्वारा प्रेरित हो रहे हैं; किन्तु इसके प्रभाव के कारण पारिवारिक सम्बन्धों को ये कैसे तोड़ता है, इसकी वास्तविकता इस कृति में देखी जा सकती है। उपन्यासकार ने इस उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव एवं उसके

कारण बदलते पारिवारिक सम्बन्धों को उद्घटित करने के लिए एक ऐसे मध्यवर्गीय परिवार का चयन किया है जो भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व कर सके है।

रघुनाथ परिवार का मुखिया है जो डिग्री कालेज में अध्यापक है। रघुनाथ अपना पूरा प्रयास इस लक्ष्य पर लगता है कि किस तरह अपने बच्चों को पढ़ा-लिखाकर स्थिर कर सके। रघुनाथ एक ऐसा प्रगतिशील एवं विकासशील पिता है जो अपने बेटों के साथ-साथ बेटी को भी शहर में रखकर पढ़ाता है। इसी विकास के रास्ते पर उन बच्चों को डालने की कोशिश में रघुनाथ की जिन्दगी मुठ्ठी से रेत की तरह फिसलती दिखाई देती है और फिर एकाएक जीवन में अकेला रह जाता है, उपन्यास के अंत में रघुनाथ के पास कोई घर नहीं बचता, न सहारा, न कोई आत्मीय सम्बन्ध जिसके सहारे वह अपना बुढ़ावा काट सके, इस प्रकार यह उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है जिसकी बुनावट में उपभोक्तवादी संस्कृति का प्रयोग है। रघुनाथ के जीवन का यथार्थ भूमंडलीकरण के दौर का ऐसा यथार्थ है जहाँ व्यक्ति, अकेले तिल-तिल कर मरने के लिए विवश है। उसके साथ अपने समाज, परिवार की कोई हमदर्दी, सहानुभूति नहीं है। इस प्रकार इस दौर में पारिवारिक सम्बन्धों का कोई मूल्य नहीं रह गया है। महानगरों के भाग-दौड़ और चकाचौध से भरे जीवन में सम्बन्धों की स्वाभाविक और आत्मीयता समाप्त होती जा रही है। उपन्यास के बारे में उमा शंकर चौधरी का कहना है ''आज जब विकास अधिक है, चकाचौध अधिक है। रफ्तार अधिक है, सम्भावनाएं अधिक हैं, सपने अधिक हैं और सपनों के पूरे होने की गुंजाइश अधिक है तब वही सम्बन्ध कैसे रहते ? जिस रफ्तार से जिन्दगी बदली, सोच बदली, जीवन की प्राथमिकताएँ बदली दुःख है कि उसी रफ्तार से सम्बन्धों के बीच की उष्मा भी बदली जब समाज में मुनाफे की होड़ मचेगी, तब सम्बन्धों और इज्जत से उपर आबार पूँजी का तांडव होगा जब सम्बन्धों का बचना कठिन होगा ही।''

अन्तः पारिवारिक सम्बन्ध

भारत में प्राचीन काल से ही संयुक्त परिवार प्रथा रही है। यहा परम्परागत संयुक्त परिवार एक ऐसा परिवार होता है, जिसमें तीन या उसके अधिक पीढियों के लोग साथ-साथ रहते हैं और जो आवास, सम्पत्ति और कार्य में संयुक्त होता है। कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में संयुक्त परिवार सफल थे किन्तु नगरीय औद्योगिक अर्थव्यवस्था ने संयुक्त परिवार के अस्तित्व को संकट में डाल दिया है। इस कारण आज एकल परिवार स्थापित होते जा रहे हैं। नगरीय समाज में गतिशीलता, भौतिक चेतना तथा व्यक्तिवादिता के कारण नवीन पारिवारिक ढाँचे का विकास हुआ है। संयुक्त परिवारों के विघ्न के साथ-साथ आज महानगरों की स्थिति ऐसी है जहाँ एकल परिवार है जिसमें एक बेटी, दो बेटे, शीला-रघुनाथ है सब मिलाकर पाँच जनों का परिवार किन्तु इस छोटे परिवार में रघुनाथ सुखी नहीं था। उदारीकृत नई-अर्थव्यवस्था ने मनुष्यों को अर्थ के नजरिए से बेहद लुभावना वातावरण उपलब्ध कराया है। शहरों एवं विदेशों में अधिक सुविधाएँ जैसे नौकरी के अधिक अवसर, शिक्षा का व्यापक सुविधाएँ उच्च जीवन स्तर और ग्रामीण क्षेत्रों में अपेक्षित साधनों का अभाव, बेरोजगारी, कृषि पर अतिरिक्त भार, कृषि के प्रति अरूचि जाति धर्म के बंधन आदि ऐसे कारक हैं जिनकी वजह से लोग गाँवों को छोड़कर शहरों एवं विदेशों की तरफ अग्रसर होने लगे हैं।

संजय की पत्नी सोनल के पिता राजीव सक्सेना उनके विवाह की सौदेबाजीनुमा बातचीत के बीच उसे अचेत करते हुए अपने पक्ष में तर्क देते हैं। ''देखो संजू ! लाँ ऑफ ग्रेविटेशन का नियम केवल पेड़ों और फलों पर ही नहीं लागू होता, मनुष्यों और सम्बन्धों पर भी लागू होता है। हर बेटे-बेटी के माँ-बाप पृथ्वी है। बेटा ऊपर जाना चाहता है और ऊपर, थोड़ा सा और ऊपर, माँ-बाप अपने आकर्षण से उसे नीचे खींचते हैं। आकर्षण संस्कार का भी हो सकता है और प्यार का भी माया-मोह का भी मंशा गिराने की नहीं होती, मगर गिरा देते हैं। अगर मैने अपने पिता की सुनी होती तो आज मैं हेतमपुर में पटवारी रह गया होता।'' इस प्रकार भूमंडलीकरण के इस दौर में सम्बन्धों में प्रेम, आदर-त्याग के स्थान पर लाभ-लोभ की पद्वति बढ़ती जा रही है। पारिवारिक सदस्यों के बीच जो एक भावात्मक मधुर सम्बन्ध हुआ करता था, वह अब समाप्त होता जा रहा है। मनुष्य व्यक्ति-विकास की दृष्टि से जहाँ एक ओर ऊँचाइयों पर पहुँचता नजर आ रहा है। वही दूसरी ओर वह अपनी पारिवारिक जड़ों से कटता जा रहा है।

माता-पिता व संतान बढ़ती दूरियाँ

भूमंडलीकरण में आज बच्चे पर्याप्त स्वतंत्र हैं। वे अपने माता-पिता के विचारों को स्वीकार नहीं करते हैं। इस उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव के कारण मारा-मारी इतनी बढ़ गई है कि हर व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा धनोपार्जन करना चाहता है। इस वातावरण में पले-बढ़े युवक-युवतियों में आत्मकेन्द्रीयता बढ़ती जा रहा है। माता-पिता की सलाह उन्हे अपनी जीवन में अनुचित हस्तक्षेप प्रतीत होती है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने आज सबसे अधिक युवा पीढ़ी को प्रोत्साहित किया है, आज युवा पीढ़ी के लिए 'पूँजी' ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उपन्यास में रघुनाथ का बड़ा ज्येष्ठ पुत्र संजय ऐसे ही चरित्र का प्रतिनिधित्व करता है जिसके लिए पैसा और उसका स्रोत्र की प्रमुख है। उसके लिए पारिवारिक सम्बन्ध कोरी भावुकता है। माता-पिता तथा संतान के बीच जो माता-पिता के प्रति आदर, श्रद्धा प्रेम का भाव था, वह अब समाप्त होता जा रहा है। रघुनाथ का बड़ा बेटा संजय पिता द्वारा तय की गई शादी को छोड़ सोनल से शादी कर लेता है क्योंकि सोनल के साथ अमरीकी बहुराष्ट्रीय कम्पनी में कैलीफोर्निया जाने का सुनहरा अवसर है। पिता द्वारा तय की गई शादी संजय के लिए कोई महत्व नहीं रखती, वृद्ध पिता को इस कारण अपने कॉलेज से निकाल दिया जाता है, किन्तु संजय पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इस प्रकार संजय अपने पिता की इज्जत पर पाव रखकर वहाँ पहुँच जाता है जहाँ से विश्व संचालित होता है।

रघुनाथ अपने बेटे को प्रतिपथ पर अग्रसर करने के लिए कर्ज लेता है, कंजूसी करता है। वही पुत्र उनकी मान-मर्यादा तथा प्रतिष्ठा को समाज में समाप्त कर देता है। एक वृद्ध पिता के दर्द को रघुनाथ के द्वारा इस प्रकार समझा जा सकता है, जब रघुनाथ कहता, ''इसी दिन के लिए उन्होने पाल-पोस कर बड़ा किया था, पढ़ाया-लिखाया था, पेट काटे थे, कर्ज लिए थे, खेत रेहन पर रखे थे और दुनिया भर की तवालते सही थी।''

इस प्रकार यह आज की युवा-पीढ़ी है जिसे केवल अपने स्वार्थ से लेना-देना है, उन्हें अपने माता-पिता तब तक ठीक लगते हैं जब तक वे उनकी इच्छानुसार उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। अमेरिका की चकाचौंध, डालर की कमाई, साफ्टवेयर इंजीनियरिंग जैसा व्यावसायिक कोर्स संजय के भीतर से एक अर्थ-संचालित इंसान बना देता है। इस प्रकार भूमण्डलीकरण ने इस भारतीय समाज को जो दिया है वह है- संवेदनशून्यता, सम्बन्ध विहीनता।

रघुनाथ का छोटा पुत्र धनंजय एक ऐसे युवा-वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो बिना मेहनत किए रातो-रात अमीर बन जाना चाहता है। इस भूमंडलीकरण के दौर में जो सफल है वे अमेरिका जा रहे हैं और जो असफल हैं जैसे धनंजय उनका लक्ष्य बिना मेहनत किए आराम का जीवन बीताना है। इस दौर में पिता-पुत्र के सम्बन्धों में परिवर्तन आ गया है पहले जो पिता-पुत्र के सम्बन्धों में प्रेम, आदर, कृतज्ञता का भाव था उसका स्थान अब स्वार्थ ने ले लिया है। रघुनाथ का छोटा बेटा धनंजय संजय के द्वारा दिए पाँच लाख रू0 में से चालीस हजार रूपये चुना लेता है पिता द्वारा पूछने पर वह गलत ढंग से जवाब देता है; रघुनाथ कहता है, 'तुमने तो कुछ इधर-उधर नहीं किया।'' इस पर धनंजय कहता है, ''मैं जानता था यही शक करेंगे आप स्वभाव से ही शक्की हैं।'' इस प्रकार माता-पिता का विरोधी धनंजय बेटे के रूप में नए सम्बन्धों की व्याख्या करता है। जहाँ सम्बन्ध नही स्वार्थ की निकटता है। धनंजय का लक्ष्य आधुनिकतम सुविधाओं से पूर्ण आराम का जीवन बिताना है इस कारण वह दिल्ली पहुँच जाता है और वह बेहद अमीर लड़की विजया से दोस्ती कर लेता है ताकि बिना मेहनत किए आराम का जीवन बिता सके। विजय के बारे में सोनल के पूछने पर धनंजय कहता है। ''बात सिर्फ इतनी है कि उसे मेरी जरूरत है और मुझे उसकी जब तक जाँब नहीं मिल जाती।''

एक पिता के लिए यह किसी बड़े हादसे से कम बात नहीं है कि उसका पुत्र किसी विधवा लड़की से जिसका बच्चा भी हो उससे शादी करें, किन्तु रघुनाथ अपने बेटे के बारे में सब कुछ जानता है वह अपनी पत्नी शीला से कहता है, ''शीला मुझे पता है कि वह इनसे भी आगे जा रहा है। उसने एक ऐसी विधवा लड़की ढूंढ़ निकाली है जिसके दो साल का बच्चा है। यही वहाँ वह कोई अच्छी खासी सर्विस भी कर रही है। ''शीला मैं जानता हूँ उसे पढ़ने में कभी दिलचस्पी नहीं रही उसकी अपने बाप से किस स्वर में बातें करता है, इसे देखा है तुमने, वह शार्टकट से बड़ा आदमी बनना चाहता है। उसके लिए बड़ा आदमी का मतलब है 'धनवान' आदमी, और वह भी बिना खून-पसीना बहायें, बिना मेहनत के।''

इस प्रकार भोगवाद में अत्याधिक आस्था के परिणामस्वरूप पारिवारिक सम्बन्धों की पवित्रता और निष्ठा भंग होती जा रही है। सरला रघुनाथ की पुत्री है। वह अपने इलाके की पहल एम0ए0, बी0एड0 है। वह स्कूल में नौकरी करती है। पाश्तात्य शिक्षा, औद्योगीकरण, यातायात के साधनों की सुविधा आदि के कारण वर्तमान समय में स्त्री को अर्थोपार्जन के लिए विभिन्न क्षेत्रों में सुविधायें प्राप्त हुई, व्यवसायी युग की भव्यता, सुख-सुविधा की अदम्य लालसा, समाज में पुरूष के समान अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने की प्रबल आकांक्षा और बेहतर जीवन जीने के इच्छा ने आज स्त्री की स्थिति में परिवर्तन किया है। 'सरला' भी ऐसे ही चरित्र का प्रतिनिधित्व करती है। हर माता-पिता की तरह शीला-रघुनाथ भी सरला का विवाह करना चाहते हैं किन्तु दहेज की समस्या के कारण उसके रिश्ते की बात कहीं बन नहीं पाती, दूसरी तरफ सरला का विवाह करने से इंकार कर देती है उसके सामने विश्व पूँजी बाजार की चमक-दमक है, कभी न खत्म होने वाली महत्वकांक्षा एवं सपनों की श्रृंखला है अचानक वह सबको पा लेने के लिए मचल उठती है, वह एक आधुनिक नारी है जो अपनी मर्जी से विवाह करना चाहती है। ''मैं करूंगी लेकिन अपनी शर्तो पर, आप मेरी 'स्वाधीनता, दूसरो के हाथ बेच रहे थे, यहॉ मेरी 'स्वाधीनता' सुरक्षित है, आप 'अतीत और वर्तमान, से आगे नही देख रहे थे। हाँ ! मैं भविष्य देख रही हूँ जहाँ 'स्पेस' ही स्पेस है।''

इस तरह आधुनिक शिक्षा, वैयक्तिक चेतना, फिल्मों आदि के प्रभाव के कारण नवयुवक-युवतियों में प्रेम-विवाह, अन्त-र्जातीय विवाह को बढ़ावा मिला है। इन विवाहों में परिवार के सदस्यों की कोई भूमिका नहीं रहती, सरला जब हरिजन जाति के लड़के से विवाह करना चाहती है तो रघुनाथ उसे घर से निकाल देता है। किन्तु अंत में जब शीला रघुनाथ को यह सूचना देती है कि उसने विवाह नहीं किया तो इस पर रघुनाथ कहता है कि इससे तो वह विवाह कर लेती। इस प्रकार शीला-रघुनाथ मन में सरला के प्रति प्रेम है किन्तु सरला का ध्यान केवल असम्भव ऊँचाइयों को छू लेने में है, जो किसी भी सामान्य युवती के लिए कठिन है, लेकिन जीवन में वह संतुलन नहीं बना पाती। सब कुछ पा लेने के चक्कर में वह अपना सर्वस्व खो देती है कठिनाई पड़ने पर वह अपनी माँ को अपने पास बुला लेती है। इस प्रकार आज बच्चे माता-पिता का सहारा बनने की बजाय बोझ बन जाते हैं।

रघुनाथ के ऊपर जब बेटों का सहारा नहीं रहा। तब रघुनाथ के भतीजे उसकी जमीन को कब्जा करना चाहते हैं। रघुनाथ को भी अपनी धरती तथा मर्यादा से मोह था, भतीजों का उत्पात, अपमान का सामना करने के लिए हर पिता की तरह वे भी अपने बेटों की ओर देखते हैं- किन्तु बेटों में अपनी जमीन से कोई मोह नहीं है वह अपने पिता से कहते हैं, ''क्या कर लिया खेती करके आपने ? कौन सा तीर मार लिया ? खाद महंगी, नहर में पानी नहीं, मौसम का भरोसा नहीं, बैल रहे नहीं, भाड़े पर ट्रैक्टर मिले न मिले, हलवाहे और रहे नहीं- किसके भरोसे खेती करो ? और खेती भी तब करो जब हाँथ में बाहर से चार पैसे आये, क्या फायदा ऐसी खेती में ?

इस प्रकार संजय धनंजय की माँग कर बैठते है। मजबूत कंधे की अनुपस्थिति में वृद्ध पिता अपने भतीजों द्वारा पिट जाता है। पिता अपने बेटों को खबर देते हैं लेकिन बेटों को अपनी चमक-दमक वाली जिन्दगी से फुर्सत ही नहीं है। एक पिता ने अपनी जिस इज्जत के लिए ता-उम्र मेहनत की, जीवन-भर संघर्ष किया समय के इतने घाव सहे, झंझावत झेले उन्हीं बच्चों के लिए माता-पिता की इज्जत कोई मायने नहीं रखती। रघुनाथ की इस टीस को इस प्रकार समझा जा सकता है, वह अपनी पत्नी शीला से कहता है, ''शीला हमारे तीन बच्चें है लेकिन पता नहीं क्यों कभी-कभी मेरे भीतर ऐसी हूक उठती है जैसे लगता है- मेरी औरतें बाँझ है और मैं निःसंतान पिता हूँ। माँ और पिता होने का सुख नहीं जाना हमने। हमने न बेटे की शादी देखी, न बेटो की। न बहू देखी न होने वाला दामाद देखा। हम ऐसे अभागे माँ-बाप हैं जिसे उनका बेटा अपने विवाह की सूचना देता है और बेटी धौस देती है कि इजाजत नहीं दोगे तो न्यौता नहीं दूँगी।''

उपन्यासकार रघुनाथ की इच्छा को इस प्रकार व्यक्त करते हुए कहते हैं, ''रघुनाथ भी चाहते थे कि बेटे आगे बढ़े। वे खेत और मकान नही है कि अपनी जगह ही न छोड़े; लेकिन यह भी चाहते थे कि ऐसा भी मौका आए जब सब एक साथ हों, एक जगह हो आपस में हँसे गाए, लड़े, झगड़े, हा-हा-हू-हू करे, खाए पिएँ, घर का सन्नाटा टूटे। मगर कई साल हो रहे हैं और कोई नहीं। और बेटे आगे बढ़ते हुए इतने आगे चले गए कि वहा से पीछे देखे भी तो न बाप नजर आएगा न माँ।

इस प्रकार वर्तमान समय में बच्चों के मन में माता-पिता के प्रति आदर, प्रेम, कर्तव्यनिष्ठा का भाव समाप्त हो चला है। इस कारण पारिवारिक सम्बन्ध दिनो-दिन संकटग्रस्त होते जा रहे हैं।

दामपत्य सम्बन्ध या पति-पत्नी के बीच सम्बन्धः

(क) रघुनाथ तथा शीला का सम्बन्ध : इस कृति में शीला रघुनाथ पुरानी पीढ़ी के रूप में पति पत्नी के प्रतिनिधित्व चरित्र है। स्वतंत्रता के उपरान्त नए विकास कार्यो होने पर नगरों में व्यवसाय की सम्भावनाएं बढ़ी, ग्रामीण युवक शहर की ओर आकृष्ट हुए। बड़ा आदमी बनने का ख्वाब या धन कमाने की मजबूरी गांव से लोगों को शहर की ओर खींच लेती है। इस प्रकार इस परिवेश में मध्ययवर्गीय व्यक्ति आर्थिक स्वार्थो के इस कठोर संघर्ष में जीवन भर अपनी इच्छाओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति करने में लगा रहता है।

आर्थिक स्पर्धा एवं होड़ की इस लड़ाई में वह अपना सम्पूर्ण प्रयास लगा देता है। इसी बीच उसका अपनी पत्नी शीला से कभी प्रेम से नहीं रह सका। उपन्यास में उपन्यासकार की टिप्पणी है, ''शीला के साथ, रघुनाथ के रिश्ते दाम्पत्य के ही रहे, प्यार के नही हो सके।''

रघुनाथ को अंत में निराशा होती है कि वह कभी शीला को प्रेम नहीं कर सका, आर्थिक लड़ाई लड़ते समय वह यह भूल गया कि उसके भीतर का स्नेहिल स्रोत सूख गया है। इस प्रकार रघुनाथ शीला के सम्बन्धों दाम्पत्य ही रहे। इस भागदौड़ भरे जीवन में पति-पत्नी के बीच जो 'प्रेम' होना चाहिए वह इन सम्बन्धों में नहीं रहा।

(ख) संजय एवं सोनल का सम्बन्धः महानगरों में शिक्षा का प्रसार, व्यक्ति स्वातंत्र्य, नवीन मूल्य दृष्टि आदि ऐसी अनेक परिस्थितिया प्रकट हुई जिन्होने परम्परागत वैवाहिक सम्बन्धों को परिवर्तनोन्मुख कर दिया है। महानगरों में विकसित भौतिकवादी दृष्टिकोण ने प्रचालित विवाह सम्बन्धी मान्यताओं को प्रभावित किया है। वर्तमान समय में विवाह न तो कोई पवित्र धार्मिक सामाजिक कर्त्तव्य है और न ही एक अटूट बंधन। आज विवाह अपनी महत्वकांक्षा पूरी करने का तथा तात्कालीन आवश्यकता पूरी करने का माध्यम बन गया है। अपना स्वार्थ पूरा हो जाने पर उसे तोड़ा भी जा सकता है।

संजय भी इसी कारण सोनल से विवाह करता है ताकि वह अमेरिका जा सके। सोनल के साथ उसके पास एक स्वर्णिम भविष्य है। उपन्यासकार के अनुसार, ''संजय ने प्यार किया था सोनल को। यह प्यार किसी सड़कछाप टुच्चे युवक का दिलफेंक प्यार नही था इसमें गुणा-भाग भी था और जोड़-घटाना भी। जितना गहरा था, उतना ही व्यापक। वर्तमान समय में सच्चे प्रेम का अभाव है। विवाह केवल एक दिखावा है अपना स्वार्थ पूरा करने का, वैवाहिक जीवन में प्रेम कोरी भावुकता बनकर रह गया है प्रेम पर स्वार्थ हावी होता जा रहा है।

वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति में विवाहोत्तर त्रिकोणात्मक प्रेम दामपत्य जीवन में बढ़ता जा रहा है, प्रेम का यह रूप दामपत्य सम्बन्धों को तोड़ता जा रहा है। इस टूटन का प्रमुख कारण है- पैसा, पैसा पाने की ललक पति-पत्नी के सम्बन्धों को कैसे तोड़ती है, इसका चित्रण इस उपन्यास में देखा जा सकता है। संजय को जब लगता है कि सोनल से उसके स्वार्थ की सिद्धि हो गई है तो वह उससे अमीर लड़की आरती गुर्जर जो एन0आर0आई0 उद्योगपति की इकलौती संतान है तो वह उसे प्रेम करने लगता है, ताकि वह उसके माध्यम से ओर आगे बढ़ सके। उनके प्रेम के बारे में सोनल को भी पता होता है, उपन्यासकार के अनुसार, 'आरती गुर्जर-उसके लैण्डलार्ड की बेटी। उसी कॉलसेन्टर में काम करती थी जिसमें संजय करता था। साथ आना-जाना उसकी कार से होता था। दिन-रात का साथ आश्चर्य यह था कि आरती के माँ-बाप उन्हें एक-दूसरे के करीब आते देख रहे थे फिर भी वे चुप थे। आश्चर्य यह भी था कि उनकी आँखों के सामने वे छेड़छाड़ करते थे- बेशर्मी की हद तक और टोकने पर हँसने लगते थे।

वर्तमान समय में वैवाहिक सम्बन्धों में विवाहोत्तर त्रिकोणात्मक प्रेम बढ़ता जा रहा है। आधुनिक जीवन में स्त्री-पुरूष परम्परागत वर्जनाओं और बंधनों को स्वीकार नहीं करते। नैतिक-अनैतिक, पाप-पुण्य, अच्छाई बुराई की मान्यताएँ आज बदल गई है। आज अपने व्यक्तित्व की स्वतंत्रता एवं पैसे तथा अधिक-ऊँचाई पर बढ़ने की कोशिश वैवाहिक सम्बन्धों को तोड़ती जा रही है। जिसके लिए केवल आगे बढ़ना ही मुख्य है भले इसके लिए अपने किसी भी सम्बन्ध दर-किनारा करना पड़े।

सोनल को जब संजय के साथ अमेरिका में रहते हुए यह लगता है कि संजय केवल अपने बारे में सोचता है। उसके बारे में नहीं तो वह स्वयं ही अपने जीवन के बारे में सचेत हो जाती है। 'यहाँ रहते हुए सोनल भी कमाई कर सकती थी।

किसी विश्वविद्यालय में, कॉलेज में, लाइब्रेरी में, कहीं भी। कम्प्यूटर में भी अच्छी खासी गति थी; लेकिन संजय ने जब भी सोचा, खुद के बारे में सोचा, सोनल के बारे में सोचने की फुर्सत ही नहीं थी। उसने सोलन को 'हाउस वाइफ' से ज्यादा नहीं होने दिया और वह भी बनारस के इंतजार में 'आज कल परसो' करती रह गई थी।

भूमण्डलीकरण की भारतीय नवयुवकों को एक विचित्र स्थिति देखने को मिलती है। एक ओर वे पुरानी व्यवस्थाओं में परिवर्तन चाहते हैं किन्तु दूसरी ओर वे अपने परम्परागत सांमतीय मूल्य को त्यागना भी नहीं चाहते। इसी सन्दर्भ में एक ओर ये चाहते है कि उनकी पत्नी अधिक से अधिक आधुनिक हो, किन्तु दूसरी ओर ये सांमतीमूल्य के आधार पर उस पर अपनी पूर्ण सत्ता को भी थोपना चाहते हैं दोनों व्यवस्थाओं को एक साथ स्वीकार करने के कारण उनके वैवाहिक जीवन में सामजंस्य स्थापित नहीं हो पा रहे हैं। यह असंतुलन पारिवारिक जीवन में कलह के कारण वर्तमान समय में दामपत्य जीवन रागात्मकता के लिए छटपटाते हुए देखे जा सकते हैं, आर्थिक स्वतंत्रता, आधुनिक बोध पाश्चात्य शिक्षा के कारण आज स्त्री में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आई है। इस कारण सोनल भी एक आधुनिक नारी है। वह भी आगे बढ़ने के लिए सोचने लगती है। उपन्यासकार के अनुसार, ''उसी दम उसने निर्णय लिया कि अब नहीं रूकना यहाँ। वह बहाने की ही खोज में ही थी कि राची से पापा का ई-मेल आया कि तुरन्त आ जाओ, 15 को तुम्हारा इन्टरव्यू है। उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। यह उसकी आत्मा की पुकार थी जो विश्वविद्यालय तक पहुँची थी।''

इस प्रकार जब सोनल को आरती-संजय की दोस्ती का पता चलता है तो वह भी अपने कॉलेज के दोस्त समीर के बारे में सोचने लगती है ''आज भोर के उजाले में खिड़की से फिर पुकार रही थी सोनल की आत्मा संजय को नहीं, समीर को सुनो, और चले आओ।''

यही से इस उपन्यास में पति-पत्नी के बीच सम्बन्ध विच्छेद की पद्धति देखने को मिलती है। प्राचीन भारतीय समाज में विवाह को एक अटूट बंधन माना जाता था। एक बार विवाह हो जाने पर पति-पत्नी को उनका निर्वाह करना ही पड़ता था। किन्तु समय के साथ समाज में जो परिवर्तन हुए, विचारों में जिस वैज्ञानिकता और तार्किकता का समावेश हुआ उसने इस मान्यता को स्वीकार करने से इंकार कर दिया है कि मृत सम्बन्धों को जबरदस्ती ढोते रहना अनिवार्य है। इस कारण वर्तमान समय में पति-पत्नी वैधानिक रूप से तलाक लेकर अलग-अलग रहने लगे हैं या बिना तलाक ही अपना जीवन बिता रहे हैं। सोनल को जब यह पता चलता है कि संजय ने आरती से विवाह कर लिया है तो वह थोड़े समय के लिए तो दुःखी होती है, किन्तु बाद में उसका स्वाभिमान जाग उठता है, सोनल को दुःख इस बात का ज्यादा होता है कि वह उससे बिना पूछे तलाक बिना शादी कर लेता है, उसने सोनल के 'अहम' को चोट पहुँचाई थी, वह कहती है तुम समझते क्या हो अपने आपको ? अरे तुमने डाइवोर्स के लिए पूछा होता, 'हाँ' कर देती मैं। तुम नहीं देते कहते तो मैं दे देती। पूछा तक नहीं, इशारा तक नहीं किया। बगैर डाईवोर्स के शादी कर रहे हो ? अपमानित करके मुझे ? बिना किसी गलती के, कसूर के ! और बेशर्मी यह पूछने पर मुस्कुराते हुए बताते हुए बताते हो कि हॉ भई ! कर ली ! करनी पड़ी। मूर्ख समझते हो मुझे ? जैसे मैं तुम्हें जानती ही न होऊँ ? जैसी तुम्हारी हरकतों से अनजान रही हूँ ? मैं तो बच्चू, तुम्हारी खटिया खड़ी कर देती लेकिन क्या बताउ लोग यही समझेंगे कि मैं यह सब गुजारा भत्ता के लिए कर रही हूँ, जबकि मैं थूकती हूँ तुम्हारी कमाई पर।''

भूमंडलीकरण के इस दौर में ऊँचाईयों तक पहुँचने की मारा-मारी, अधिक से अधिक धनोपार्जन की प्रवृत्ति, शिक्षा का प्रसार, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य तथा तर्किक दृष्टिकोण के कारण पति-पत्नी के बीच प्रेम के स्थान पर स्वार्थ, विवाहोत्तर त्रिकोणात्मक प्रेम तथा सम्बन्ध-विच्छेद की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। पति-पत्नी के बीच सम्बन्धों में प्रेम, त्याग, विश्वास, कर्तव्यनिष्ठा, सहयोग जैसी भावनाएँ समाप्त हो चली है ।

सास-ससुर-बहू के बीच सम्बन्ध

माता-पिता व संतान के सम्बन्धों की भांति सास-सुसर और बहू के सम्बन्धों में भी परिवर्तन हो रहे हैं। नगरों के शिक्षित परिवारों में बहू शिक्षित होने के कारण अपने सास-ससुर के साथ उन्मुख वार्तालाप करती है। इसी प्रकार सोनल भी रघुनाथ-

शीला से अपने माता-पिता समान वार्तालाप करती है। वह अपने सास-ससुर को अशोक विहार में अपने घर इस कारण बुलाती है क्योंकि वहाँ आए दिन हत्या एवं चोरियाँ होती थी। किन्तु फिर भी सोनल का व्यवहार अपने सास-ससुर से अच्छा रहा। सोनल शिक्षित होने के कारण स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है, वह अपने ऊपर किसी भी प्रकार अपने रहन-सहन के तौर तरीके में भी परिवर्तन एवं नियंत्रण को सहन नहीं कर सकती।

उदाहरणतः, ''शीला दो बार बहू से दुःखी हुई। वह जग जाती थी और मैं चार बजे और सोनल सोती रहती थी आठ बजे तक। उसने उसे जगाने का एक तरीका निकाला। उसने सुबह छः बजे चाय तैयार की और उसे जगाया। सोनल सोई रही और उठने पर ठंडी चाय सिंक में उडेल दी। फिर अपने लिए अलग से नींबू की चाय बनाई।''

शीला देखती रही। दूसरे दिन उसने नींबू की चाय बनाई- थोड़ी देर से ! यानि 7 बजे। उस दिन भी यही हुआ। सोनल ने कहा, ''मम्मी, मेरी चाय रहने दिया करें आप ! जब उठूँगी, तब बना लूँगी मैं।''

इस प्रकार सास-बहू के सम्बन्धों में भी शिक्षा का व्यापक प्रचार, पाश्चात्य जीवन शैली अपनाने एवं व्यक्ति स्वातंत्र्य से प्रभावित होने के कारण सम्बन्ध परिवर्तित हुए। रघुनाथ ने शीला-सोनल के झगड़ों के कारण को देखते हुए अपने रहन-सहन को सोनल के अनुसार ढ़ाल दिया। उपन्यासकार के अनुसार, ''शीला की गलतियों से इन्होंने बहुत कुछ सीखा था। ये अपने हिसाब से उसे नहीं चलाते थे, उसके हिसाब से खुद चल रहे थे। इन्हें 'ससुर' की जगह 'बाप' बनकर चलना ज्यादा सुविधाजनक लगा था। अव्वल को तनाव का कोई मसला पैदा ही न होने दो और पैदा भी हो तो गम खा जाओ या टाल जाओ।

इसी समझदारी ने ससुर और बहू को एक दूसरे का दोस्त बना दिया था। हो सकता है इसके पीछे कही न कहीं उनका अपना 'अकेलापन' भी हो गया और 'अब' भी।

इस प्रकार वर्तमान समय में शिक्षा के प्रभाव, आधुनिक जीवन शैली ने रहन-सहन के कारण सास-ससुर एवं बहू के सम्बन्धों में परिवर्तन आया है। आज भी युवा पीढ़ी की शिक्षित बहुएँ अपने ऊपर किसी भी प्रकार का नियंत्रण नही चाहती।

आज सास-ससुर, बहू का सम्बन्ध तब तक मित्र या बेटी के समाज है। जब तक वह नई पीढ़ी के रहन-सहन अपना समझौता ना कर ले। आज की पुरानी पीढ़ी को बहू के साथ रहने के लिए अपनी खुशी का त्याग करना ही पड़ता है, भले ही उन्हे अब या अकेलापन का सामना करना पड़े। इस प्रकार सास-बहू के सम्बन्धों में जो सेवा-भाव निहित रहता था वह अब निरन्तर टूटता जा रहा है ।

भाई-बहन का सम्बन्ध

वर्तमान युग उद्योग धंधों, तकनीकी और वैज्ञानिक विकास का युग है जीवन यंत्रचलित और तेज रफ्तार से दौड़ने वाला हो गया है। पारिवारिक सम्बन्धों में भाई-बहन, भाई-बहन का सम्बन्ध प्रेम, त्याग, सौहार्द के लिए प्रसिद्ध रहा है; किन्तु समय की अर्थप्रधान व्यवस्था में भाई-बहन का 'सम्बन्ध' भी अर्थ के कारण प्रभावित हो रहा है। पहले भाई-बहन का सम्बन्ध में परस्पर प्रेम प्रगाढ़ बंधन से युक्त होता था। किन्तु जहाँ सम्बन्धों के बीच अर्थ आ जाता है वहा सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं। इस यथार्थ का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है तभी याद करता है जब धनंजय अपने भाई संजय को तभी याद करता है जब उसके पास पैसे नहीं होते। उसी प्रकार धनंजय भी सरला को तभी मिलने जाता है जब उससे पैसे लेने होते हैं।

धनंजय-संजय का अपनी बहन के प्रति सम्बन्ध प्रेम का नही है, उसी प्रकार सरला के मन में अपने भाईयों के प्रति स्नेह या मोह नही है। भीड़भाड़ और व्यस्त जीवन में भाई-बहन, कोई बहन के सम्बन्ध स्वार्थ में परिवर्तित होने के साथ टूटते जा रहे हैं। व्यक्ति अपनी भाई-बहन के प्रति अजबनी बनता जा रहा है। वह इस कदर स्वार्थी हो गया है कि वह अपने बंधु, भाई बहन के लिए त्याग, प्रेम, स्नेह की भावना को भूलता जा रहा है। इस प्रकार उपभोक्तवादी युग में व्यक्ति नितांत आत्म केन्द्रित होता जा रहा है। वह केवल अपनी सुख-शान्ति तक सीमित रहता है। परिवार के सदस्य उसके लिए अजनबी एवं अपरिचित होते जा रहे हैं।

बुजुर्गों के प्रति परिवार के सदस्यों के सम्बन्ध

संयुक्त परिवारों में बुजुर्ग माता-पिता की सेवा अच्छी प्रकार से की जाती थी। किन्तु एकल परिवार विकसित होने के कारण उनकी स्थिति दयनीय होती जा रही है। औद्योगीकरण धर्मवादिता, स्वतंत्रता प्राप्त करने की भावना, शिक्षा का व्यापक प्रसार ने व्यक्ति को गाँवों से शहर और शहरों से विदेशों की तरफ आकर्षित किया है। शहरों में विदेशों की चकाचौंध ने युवा पीढ़ी को प्रभावित कर ऐसे व्यवसायों के लिए तैयार किया है जो उनके मूल स्थान में नहीं होता। अतः वे ऐसे लोग अपने परिवार से पृथक होकर वहाँ रहने लगते हैं, जहाँ उन्हें अपने सपने पूरे करने का मौका मिलता है। इस प्रकार मनुष्य केवल अपने बारे में सोचता है और जीवन में आगे बढ़ने के बारे में चितिंत रहता है, जिन माँ-बाप ने उसे कर्ज लेकर पढ़ाया, यहाँ तक पहुँचाया वे उसके लिए आज की युवा पीढ़ी उदासीन हो चली है। यही स्थिति रघुनाथ-शीला की है, जिन बच्चों को उन्होंने कठिनाइयों एवं संघर्षो से पढ़ाया था, वही बच्चे आज उनका सहारा बनने से इंकार कर देते हैं। संजय-धनंजय अपने-अपने जीवन में व्यस्त रहते हैं। सरला भी अपने माता-पिता का सहारा बनने की बजाय उनपर वृद्धावस्था का बोझ बन जाती है।

जब उसे अपने माता-पिता की आवश्यकता रहती है तो उन्हें अपने पास बुला लेती है। इसी प्रकार उनकी बहू सोनल भी अपनी वृद्ध सास से घर का काम काज करवाती है। हर माता-पिता अपने यौवनावस्था में अपनी जरूरतों की कटौती कर अपने बच्चों की इच्छा एवं आवश्यकताओं को महत्व देते हैं उस समय हृदय के किसी कोने में यह अभिलाषा होती है कि वह बच्चे वृद्धावस्था में उनकी लाठी बनेंगे। ऐसी ही अभिलाषा शीला के मन में भी थी, उदाहरणतः, ''वे इतने निस्वार्थ तो नहीं थे और उनकी उम्मीद भी उनसे अलग नही थी तो गाँव घर के थे; कि जब वे अशक्त हो जायेंगें तो ये बच्चे उनकी आँखे बनेंगे, उनके हाथ पाँव बनेंगे, कि वे बीमार होंगे तो यही बच्चें उनकी सेवा करेंगे, दवा दारू करेंगे, अस्पताल में भर्ती करायेंगे कि मरने लगेंगे तो मुँह में गंगा जल तुलसी डालेंगे, अर्थी सजायेंगे, श्मशान ले जायेंगे, क्रिया कर्म करेंगे।

किन्तु वृद्ध माता-पिता की यह अभिलाषा किस प्रकार टूटती है इसकी वास्तविकता इस कृति में सुनी जा सकती है। जब वृद्ध होने पर रघुनाथ को जीवन के यथार्थ के बारे में पता चलता है, और जब बच्चों को अपने माता-पिता से कोई प्रेम या उनके प्रति कृतज्ञ भावना नही होती तो रघुनाथ निराश होते हुए कहता है, ''लेकिन जीवों में तो इससे बड़ी मूर्खता क्या हो सकती है ? और मरने के बाद सड़ो-गलो, कौवे-चील खाएँ या बच्चे शहरों, विदेशों में रहने लगे हैं, अपने माता-पिता को अकेले छोड़कर चले जाते हैं।'' रघुनाथ के अनुसार, ''संतोष करते हैं, इस प्रकार युवा पीढ़ी अपने वृद्ध माता-पिता के प्रति उदासीन होती जा रही है- बुजुर्गों के प्रति जो प्रेम, आदर, सम्मान, न्याय, कर्तव्य भावना का सम्बन्ध होता था वह अब लुप्त होता जा रहा है। सम्बन्ध स्वार्थ में परिवर्तित होने के साथ टूटते जा रहे हैं।''

निष्कर्ष

इस प्रकार स्वतंत्रता के उपरान्त नए औद्योगिक परिवेश ने सामान्य व्यक्ति को अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयास में और अधिक तीव्रता से संघर्ष में रहकर आजीविका कमाने, आय के स्रोत बढ़ाने तथा अपनी आर्थिक अभावग्रस्तता को समाप्त करने की प्रक्रिया में पारिवारिक सम्बन्धों की समस्या और अधिक जटिल हो गई थी। इस नए परिवेश में सम्बन्धों की परिभाषा बदल गई है।

तरक्की और भौतिकता के पीछे भागते लोगों के अन्दर मानवीय संवेदनाएँ, सहानुभूतियाँ और आपसी सम्बन्धों में समपर्ण के बजाय व्यावसायिकता और स्वार्थी मानसिकता कार्य करती है। आधुनिक युग में पारिवारिक सम्बन्ध अर्थ की धूरी पर चक्कर काट रहे हैं। आत्मीयता तथा उससे उत्पन्न दया, ममता, स्नेह, श्रद्धा इन सब का मूल्य क्षीण हो गया है- आज का मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए किसी भी सम्बन्ध को सेतु बना सकता है, वर्तमान समय में सम्बन्धों में मात्र सतही-प्रेम दृष्टिगोचर होता है, महज अपने परिवार के सदस्यों, रिश्तों से इस स्तर तक कट गया है कि माता-पिता, भाई-बहन सब एक इशारे के लिए अजनबी एवं अपरिचित हो गए, व्यक्ति के अंधे स्वार्थ ने पारिवारिक सम्बन्धों में शिथिलता उत्पन्न की और उन्हें निर्जीव बना दिया। आधुनिक युग का आदमी केवल अपनी आवश्यकताओं को पूरी करने के सन्दर्भ में विचार कर पाता है। दूसरों का दुख, कष्ट, मृत्यु इत्यादि में उसका कोई लेना देना नहीं है।

इस प्रकार रघुनाथ का परिवार भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व करता है, जिसके माध्यम से भारतीय समाज के पारिवारिक सम्बन्धों में उभरते परिवर्तन को अधिव्यक्त किया गया है। परम्परागत रागात्मक सम्बन्धों का भाव किन भयावह परिणामों को जन्म दे रहा है, इन सभी की सफल अधिव्यक्ति इस उपन्यास से हुई है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

'रेहन पर रग्घू' -काशीनाथ सिंह
'इसी दुनिया में कभी हरा रंग भी होता था भाई, वह कहाँ गया ? -उमा शंकर चौधरी (आलोचना जुलाई सितम्बर 2008), पृष्ठ न0 - 85
रेहन पर रग्घू, पृष्ठ संख्या 27
वही, पृष्ठ संख्या 27
वही, पृष्ठ संख्या 30
वही, पृष्ठ संख्या 89
वही, पृष्ठ संख्या 89
वही, पृष्ठ संख्या 54
वही, पृष्ठ संख्या 105
वही, पृष्ठ संख्या 89
वही, पृष्ठ संख्या 133
वही, पृष्ठ संख्या 123
वही, पृष्ठ संख्या 20
वही, पृष्ठ संख्या 109
वही, पृष्ठ संख्या 110
वही, पृष्ठ संख्या 110
वही, पृष्ठ संख्या 110
वही, पृष्ठ संख्या 138
वही, पृष्ठ संख्या 119
वही, पृष्ठ संख्या 120
वही, पृष्ठ संख्या 148
नगरीकरण और हिन्दी उपन्यास -क्षमा गोस्वामी
21वीं सदी - मनोहर श्याम जोशी
21वीं सदी के प्रथम दशक के हिन्दी उपन्यास -सतीश पटेल
14 भारतीय उपन्यास -तुलसी नारायण सिंह
प्रेमचंद विचारधारा : परम्परा एवं परिदृश्य - ए0डी0 शोरीकार

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,75-79**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 14 फरवरी 2014

इतिहास में शूद्र का विवेचन : एक संक्षिप्त पृष्ठभूमि

हरिशंकर राय*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *इतिहास में शूद्र का विवेचन : एक संक्षिप्त पृष्ठभूमि* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *हरिशंकर राय* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

प्रागैतिहासिक काल की सभ्यताओं में हड़प्पा सभ्यता सबसे विकसित सभ्यता मिली है।[1] पश्चिम में हड़प्पा सभ्यता पाकिस्तान और ईरान की सीमा पर स्थित सुतकाजेनडोर तक फैली हुई थी। पूर्व में इसका विस्तार गंगा और यमुना के बीच में दिल्ली के निकट स्थित आलमगीरपुर तक था। दक्षिण में खंभात की खाड़ी में लोथल का प्रसिद्ध बंदरगाह इस सभ्यता का महत्त्वपूर्ण केन्द्र था, किन्तु सबसे अधिक दूर भगतराव थाजो नर्मदा नदी के किनारे पर स्थित है। इस प्रकार यह सभ्यता लगभग पांच लाख वर्ग मील में फैली हुई थी। प्रस्तुत शोध पत्र में शूद्रों के विवेचन की बात कही गयी है, तो आइये वस्तु स्थिति के बारे में ज्ञात करें।

देखा जाये तो हम स्वतंत्र मजदूरों को निम्न या शूद्र वर्ग में रख सकते हैं। सम्भवतः वे गोदामों में अनाज रखते, गेहूँ को कूटकर आटा बनाते, ईंटें बनाते, मकान, सड़क और नालियों की निर्माण करते, सोने-चाँदी और ताँबे के आभूषण बनाते और घर में काम आने वाले बर्तन और लकड़ी का सामान बनाते थे। कुछ लोग कपड़ा भी बनाते होंगे।

हड़प्पा सभ्यता के बाद मृद्भाण्डों[2] के आधार पर पुरातत्ववेत्ताओं के अनुसार 1750ई0पू0 से 1400ई0पू0 के बीच इस प्रदेश (भारत) में ईरानी सभ्यता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।[3]

विद्वानों के अनुसार हड़प्पा सभ्यता के नगरों का नाश सम्भवतः आर्यों ने 1750ई0पू0 के लगभग किया।[4] शास्त्रों या पुस्तकों में सीधे शूद्रों के पास धन होने का उल्लेख तो प्राप्त नहीं है; पर उनकी स्थिति से ही उनकी आर्थिक स्थिति पता की जा सकती है।

सम्भवतः आर्य इन अनार्यों से वैवाहिक सम्बन्ध नहीं करते थे। इस प्रकार ज्ञात होता है कि शूद्र भी आर्थिक रूप से सुदृढ थे, क्योंकि जो खेती करता है उसके पास कोई कमी नहीं रहती है।

* शोध छात्र, इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा (बिहार) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

ब्राह्मण ग्रन्थों में 'रथकार' और 'तक्षक' की गणना रथियों में की गई थी। इससे स्पष्ट है कि उनकी समाज में प्रतिष्ठा थी। प्रारम्भ में चौपड़ में शूद्र भी राजा के साथ भाग लेते थे, अश्वमेध यज्ञ के समय राजा स्वयं 'रथकार' के घर ठहरता था। इस प्रकार के साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि शूद्र आर्थिक रूप से सम्पन्न थे।

'काठक संहिता'[5] के अनुसार शूद्रों से अग्निहोत्र के लिए गाय का दूध नहीं निकलवाना चाहिए, किन्तु *शतपथ ब्राह्मण*[6] सोम यज्ञ के शूद्र को भाग लेने का अधिकार देता है। *तैत्तिरीय ब्राह्मण*[7] ने उस धार्मिक क्रिया का उल्लेख किया है जिसके द्वारा रथकार के लिए यज्ञ की अग्नि की स्थापना की जाती थी। *रथकार की गणना शूद्रों में की जाती थी परन्तु उसे वैदिक यज्ञ करने का अधिकार दिया गया है।* एक दूसरे प्रकरण में *शतपथ ब्राह्मण*[8] का मत है कि आज के लिए अभिशिक्त व्यक्ति को शूद्र से बात नहीं करनी चाहिए,

रामशरण शर्मा का मत है कि *शूद्रों के धार्मिक कृत्यों से वंचित किए जाने का प्रमुख कारण उनकी आर्थिक दशा थी। वे ब्राह्मणों की दक्षिण में पुष्कल धनराशि देने में असमर्थ थे। ये उदाहरण स्पष्ट करते हैं कि उत्तर वैदिक काल में शूद्रों की आर्थिक स्थिति उन्नत नहीं थी।*

बौधायन (लगभग 300ई0पू0) के अनुसार स्नातक को पतित व्यक्तियों, स्त्रियों या शूद्रों के साथ यात्रा नहीं करनी चाहिए। उसने लिखा है कि जो विद्यार्थी सफलता प्राप्त करना चाहे उसे शूद्रों और स्त्रियों से बातचीत नहीं करनी चाहिए। उस प्रकार उत्तर वैदिक काल में शूद्रों एवं शूद्रों एवं दलितों की आर्थिक दशा भी दयनीय होती गयी।

गौतम धर्म-सूत्र से ज्ञात होता है कि इस काल के प्रारम्भ में ब्राह्मणों और शूद्रों के भी वैवाहिक सम्बन्ध होते थे। किन्तु इस काल के अन्त में यह कार्य अत्यन्त निन्दनीय समझा जाने लगा।[9]

प्रारम्भ में शूद्रों को वैदिक साहित्य पढ़ने का अधिकार था किन्तु बाद में उन्हें इससे वंचित कर दिया गया।[10]

अनिरवसित (अबहिष्कृत) शूद्र वे थे जिनको भोजन कराने से द्विजों के बरतन अपवित्र नहीं होते थे और निरवसित शूद्र वे थे जिनकों अपने बरतनों में भोजन कराने से द्विजों के बरतन अपवित्र हो जाते है।[11]

शूद्रों को पवित्र करने वाले सभी संस्कारों को कराने का अधिकार न रहा। उनका विवाह संस्कार भी बिना वैदिक मंत्रों के पाठ के किया जाने लगा। पाणिनी के द्वारा शूद्रों का जो दो भागों में विभाजन किया गया था उनका विस्तार से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि ऐसे शूद्र जो अनिवसित थे वे निरवसित शूद्रों की अपेक्षा आर्थिक रूप से सुदृढ थे।

शूद्रों से आशा की जाती थी कि वे पवित्रता, सत्यता और नम्रता से अपना जीवन व्यतीत करें। प्रत्येक शूद्र का कर्त्तव्य था कि वह प्रतिदिन स्नान करे तथा अपने आश्रित प्राणियों का भरण-पोषण करे। उसे तीन उच्च वर्ण के व्यक्तियों की सेवा करनी चाहिए और संयम से अपना जीवन बिताना चाहिए। *वह कुछ निम्न स्तर के व्यवसाय करके भी अपना निर्वाह कर सकता था जैसे कि नाई, धोबी, चित्रकार, बढ़ई और लुहार के काम।*

शूद्रों का जीवन सर्वथा दयनीय था। यदि किसी कारण से वे सेवा न कर सकें तब भी स्वामी का कर्त्तव्य था कि उनका भरण-पोषण करें। यहाँ उपर्युक्त आख्यानों में कई बार भरण पोषण की बात आ रही है इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि शूद्रों की आर्थिक स्थिति इतनी सामान्य तो अवश्य ही रही होगी

सूत्र ग्रन्थों में लिखा ळे कि चाण्डाल के स्पर्श के दोष से मुक्त होने के लिए सवस्त्र स्नान करना चाहिए। चित्र-भूत जातक से ज्ञात होता है कि चाण्डाल का देखना भी अशुभ माना जाता था। एक अन्य जातक में लिखा है कि ब्राह्मण शूद्र से इसलिए दूर भागता है कि शूद्र की छुई हुई वायु उसे न छू जाए नहीं तो वह दूषित हो जाएगा।

शूद्रों एवं दलितों की आर्थिक स्थिति ने बहुत उन्नत न बहुत गिरी हुई थी इसे हम मध्यम आर्थिक स्थिति कह सकते हैं।

कौटिल्य ने भी लिखा है कि यदि नीच जाति का व्यक्ति उच्च जाति के व्यक्ति की निंदा करे तो उसे यदि उच्च जाति का व्यक्ति नीच जाति के व्यक्तियों की निन्दा करे उसे जितना दण्ड दिया जाता है उससे अधिक दण्ड नीच जाति के व्यक्ति को देना चाहिए।

कौटिल्य ने लिखा है कि *सूती ओर गरम कपड़ा बनाने वाले जुलाहे और कवच बनाने वाले मिस्त्री नगर के पश्चिमी भाग में शूद्रों के साथ रहें। इसका अर्थ यही है कि जुलाहों और कवच बनाने वालों में अधिकांश शूद्र थे। इस प्रकार उनका आर्थिक जीवन सामान्य था।*

मौर्य काल में सम्भवतः रथकारों, वेणों, पुक्कसों और निषादों की आर्थिक स्थिति में भी कुछ सुधार हुआ क्योंकि इस काल में केवल चाण्डालों को अस्पृश्य समझा जाता था।

मनु ने शूद्र अध्यापकों और शिष्यों का भी उल्लेख किया है,[12] जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि शूद्र भी शिक्षा प्राप्त करते थे।[13] परन्तु शूद्रों को वैदिक ग्रन्थों के पढ़ने का अधिकार न था, न वे वैदिक यज्ञ ही कर सकत थे। उन्हें केवल नामकरण संस्कार कराने का अधिकार था। शूद्रों की स्थिति सांस्कृतिक से बहुत हीन थी। इसलिए मनु का मत है कि यदि किसी राष्ट्र में शूद्रों की संख्या अत्यधिक हो जाए तो उस राष्ट्र का सर्वनाश निश्चित है।[14]

मनु के अनुसार शूद्र की हत्या करने पर ब्राह्मण को वही प्रायश्चित करना चाहिए जो वह बिल्ली, मेंढ़क, कुत्ता या कौए की हत्या करने पर करता है।[15] इस काल में शूद्र की सामाजिक और धार्मिक स्थिति हीन होने पर भी उसकी कानूनी और राजनैतिक अवस्था में कुछ सुधार दृष्टिगोचर होता है। *कौटिल्य ने उन्हें कृषि और पशुपालन का अधिकार दिया है। अनार्यों को, जो साधारणतया शवों की रक्षा करके अथवा शिकार करके अपना निर्वाह करते थे, अस्पृश्य समझे जाते थे। उपर्युक्त उदाहरण शूद्रों की निम्न आर्थिक दशा को दर्शाते हैं क्योंकि जिसके पास धन है वही कुलीन है।*

याज्ञवल्क्य ने *ब्राह्मण पिता और शूद्रा माता के पुत्र को पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी माना है।*[16] *किन्तु बृहस्पति (लगभग 300ई0 से 500ई0) ने शूद्रों के पुत्र को दाय का अधिकारी नहीं माना है।*[17] *वैश्यों और शूद्रों के व्यवसाय एक जैसे थे अतः उनमें तो अन्तरजातीय विवाह होते ही होंगे।* इस काल के धर्मशास्त्रकारों का मत है कि ब्राह्मण को शूद्र का भोजन नहीं करना चाहिए किन्तु शूद्रों में भी कुछ का भोजन करना निषिद्ध नहीं था। याज्ञवल्क्य के अनुसार उच्चवर्ण का व्यक्ति अपने किसान, नाई, ग्वाले या परिवार के शूद्र मित्र का भोजन कर ले तो यह आपत्तिजनक कार्य नहीं है।[18]

स्मृतियों से ज्ञात होता है कि चाण्डालों को रात के समय नगर या गाँव के अन्दर आने की अनुमति नहीं थी। दिन में उन्हें ऐसी पोषाक पहननी पड़ती थी जो कि राजा ने उसके लिए निर्धारित कर रखी थी। वे साधारणतया गांव के बाहर ही रहते थे। उच्चवर्ण के लोक उनके स्पर्श से अपवित्र न हों इसके लिए सभी स्मृतिकारों ने कठोर नियम दिए हैं।[19]

चमार भी इस काल में अस्पृश्य नहीं समझे जाते थे। इस प्रकार सिमति काल में शूद्रों की आर्थिक दशा न उन्नत और न तो निम्न थी अपितु मध्यम थी।

[20]गार्ग्य का मत था कि शूद्र या निषाद का स्पर्श होने पर उच्च जाति के व्यक्ति को पवित्र होने के लिए जल का आचमन करना चाहिए।[21] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि शूद्र का इस काल में पूर्णतया अस्पृश्य घोषित कर दिया गया।

[22]मेधातिथि का निष्कर्ष यह है कि शूद्र के अधिकार सीमित हैं, अतः उसके कर्त्तव्य भी सीमित हैं।[23] उसे उपनयन संस्कार आदि का अधिकार नहीं है। इसलिए यह वह स्नान न कर सके, व्रत न रख सके और देवताओं की पूजा न कर सके तो उसे पाप नहीं लगता।[24]

बृहद्धर्म पुराण से संकर जातियों की संख्या 41 है जिनमें से इस पुराण के अनुसार 36 जातियों की स्थिति शूद्रों के अनुरूत है।[25] मेधातिथि ने भी सूत, मागध और आयोगव को अस्पृश्य[26] माना है क्योंकि उनका उत्पत्ति अनुलोम विवाहों से हुई थी।

स्रोत

[1]चतुर्थ संस्करण, ओमप्रकाश, विश्व प्रकाशन (न्यू एज इण्टरनेशनल लिमिटेड, प्रभाग, नई दिल्ली

[2]आलचिन ब्रिजेट एण्ड रेमण्ड : दि बर्थ आफ इण्डियन सिविलिजेशन, पृ0 140 पेंग्विन, 1968

[3]वही, पृ0 149

[4]आलचिन ब्रिजेट एण्ड रेमण्ड-दि अर्थ आफ इण्डियन सिविलिजेशन, पृ0 155

[5]काठक संहिता, 31-2

[6]शतपथ ब्राह्मण, 5, 3-4-9

[7]तैत्तिरीय ब्राह्मण

[8]शतपथ ब्राह्मण, 3, 1, 1-10

[9]गौतम धर्मसू, 4, 22
[10]आपस्तंब धर्मसूत्र
[11]पाणिनि, 2, 4, 10
[12]वही, 3-159
[13]वही, 2-238-240
[14]मनुस्मृति, 8, 22
[15]मनुस्मृति, 11, 132
[16]याज्ञवल्क्य, 2, 134
[17]बृहस्पति पुत्र विभाग, 44
[18]याज्ञवक्ल्य, 1, 166
[19]विष्णु, 16, 11, 14, बृहस्पति, पृ0 96, श्लोक -18, पृ0 359, श्लोक 8
[20]अपरार्क, टीका याज्ञवल्क्य, 3, 292
[21]अपरार्क, टीका याज्ञवल्क्य, 3, 292
[22]विश्वरूप टीका
[23]मेधातिथि टीका, मनु0 10, 6 पर
[24]मेधातिथि टीका, मनु0 10, 6 पर
[25]बृहद्धर्म पुराण, 2, 13-14
[26]मेधातिथि टीका, मनु0 11-30 पर

संदर्भ ग्रंथ सूची

माइकल एस0 एम0 -आधुनिक भारत में दलित
CHAUDHARY,A; *Advanced Of Re-Marriage In Dalit Castes*
SHYAMLAL; *Ambedkar And Dalit Movement*
सेठ, एन0 -भारत में दलित राजनीति उदय, विकास एवं प्रभाव
पंत, वी0 के0 -भारत में दलित सामान्य लक्ष्य की खोज
भारती, आर0 -बीसवीं सदी में दलित समाज
JUDGE,PS; *Changing Dalits: Exploration Across Time*
AGARWAL,B.; *Contextualizing Dalit Consciousness In Indian English Literature*
SINHA,S.; *Crime And Violence Against Dalit Women*
ARORA,N.; *Dalit & Economic Reforms*
SINGH,S.; *Dalit & Human Rights In Modern India*
GAUTAM,R.; *Dalit & Human Rights In Modern World*
SINGH,S.; *Dalit & Indian Caste System*
मिश्रा, एम0 के0 -दलित अधिकार एवं व्यवहार
ARYA,S; *Dalit And Backward Women*
SHARMA,T.; *Dalit And Human Rights*
SHARMA,T.; Dalit And Indian Caste System
ओमवेट, जी0 -दलित और प्रजातान्त्रिक क्रान्ति
ओमवेट, जी0 -दलित और प्रजातान्त्रिक क्रान्ति-2
जयदिया, एस0 -दलित महिला विकास योजना एवं बालिका शिक्षा
SHARMA,P.K.; *Dalit Politics And Literature*
CHATTERJEE,D; *Dalit Rights/ Human Rights*

सम्भनारिया, आर0 -दलित समाज की कहानियाँ
स्नेहि, के0 -दलित विमर्श और हिन्दी दलित काव्य
SINHA,S.; *Dalit Women And Globalisation In 21St Century*
SINHA,S.; *Dalit Women And Human Rights*
SINHA,S.; *Dalit Women And Panchayati Raj*
SHARMA,T.; *Dalit Women Issues And Perspectives*
SINHA,S.; *Dalit Women Socio-Economic Status And Issues*
सिंह, एन0 -दलितों के रूपान्तरण की प्रक्रिया
OMVEDT,G; *Dalits And Democratic Revolution*
KUMAR,A; *Dalits And Economic Reforms*
PRASAD,B; *Dalits And Human Rights*
SHAH,G; *Dalits And The State*
THORAT,S.; *Dalits In India : Search For A Common Destiny*
YAGATI,CR; *Dalits Struggle For Identity*
TIPPAL,BS; *Dalits Through The Ages*
BHATT,S.; *Dalits, Tribals And Human Rights*
उपाध्याय, एस0 -डॉ0 अम्बेडकर और दलित चेतना
MURALIDHARAN,V; *Educational Priorities And Dalit Society*
सिंह, एस0 -गाँधी और दलित भारत-जागरण
शर्मा, के0 के0 -मानवाधिकार एवं दलित चेतना
कुमार, के0 -महात्मा ज्योतिबा फुले दलित संघर्ष गाथा
सिंह, पी0 के0 -मुल्क राज आनन्द और दलित
सम्भारिया, आर0 -मुंशी प्रेमचन्द्र और दलित समाज
DALVI,M.C.K.; *Rights Of Dalit (A Postulation)*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,80-83**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 फरवरी 2014

गरीबी की सापेक्षता : एक विश्लेषण

डॉ. विभा त्रिपाठी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *गरीबी की सापेक्षता : एक विश्लेषण* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *विभा त्रिपाठी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

आज के विकृत पूँजीवादी वैश्विक परिदृश्य में गरीबी एक सापेक्ष शब्द है। ताज, ओबरॉय जैसे होटेल्स एवं एन्टीलिया जैसे उद्योगपतियों के निजी रिहायशी मकान वाले भारत को सदा से ही एक गरीब देश की संज्ञा से नवाजा जाता है। इससे ऊपर यदि दक्षिण एशियाई देशों तक अपनी गरीबी को विस्तारित किया जाये तो आँकड़े बताते हैं कि विश्व के आधे से ज्यादा गरीब दक्षिण एशियाई देशों में रहते हैं। इसीलिये South Asia Alliance of Poverty Eradication (SAAPE) की साधारण महासभा के प्रथम सम्मेलन में श्रीलंका के Open University के श्रीयनन्दा ने अपने उद्घाटन उद्बोधन में शरूआत में ही कहा कि "We are not poor". It has always been the west that imposes its norms and concepts on us to remind us that 'we are poor'. कहने का तात्पर्य है कि गरीबी को परिभाषित और निर्धारित करने के वैश्विक एवं राष्ट्रीय प्रयासों से गरीबों का कोई लेना-देना नहीं है। वैश्विक स्तर पर Extreme Poverty line $ 1.25 तक और Moderate Poverty line $ 2 तक है। भारत में गरीबी Calorific value के आधार पर मापी जाती है। ऐसे में, चाहे तेन्दुलकर कमेटी द्वारा Purchasing, Power, Parity (PPP) के आधार पर परिभाषित गरीबी हो या फिर डॉ0 रंगराजन समिति द्वारा परिभाषित गरीबी हो, लब्बो लुबाब यह है कि क्या गरीबी रेखा के ऊपर की सारी आबादी खुशहाल है ? सम्पन्न है ? सन्तुष्ट है ? और यदि नहीं तो फिर इस हाय-हाय, किच-किच का क्या मतलब है ?

अगर विश्व के समृद्धतम देश संयुक्त राज्य अमेरिका की चर्चा होती है तो आम धारणा यह बनती है कि यह देश न सिर्फ सर्वशक्तिशाली है वरन् सर्व समृद्धशाली भी है। परन्तु गरीबी का दुश्चक्र वहाँ भी अर्थशास्त्रियों की नाक का नकेल बनता है। करोड़ों अमेरिकी भोजन-वस्त्र और आवास की मौलिक सुविधाओं से वंचित है बाजारवाद के चरमोत्कर्ष के इस काल में ऐसे करोड़ो लोगों के साथ शिक्षा, रोजगार व्यवसाय, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा के नाम पर गहरे विभेद का सामना करना पड़ता है।

* एसोसिएट प्रोफेसर, लॉ फैकल्टी, का. हि. वि. वि. वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

कौन गरीब है ? कुल कितने गरीब है ? कहाँ गरीब चिन्हित किये जाते हैं ? गरीबी का आँकड़ा बढ़ रहा या घट रहा है ? और अन्ततः गरीब होना क्या मायने रखता है ? यह कुछ ऐसे अनुत्तरित प्रश्न हैं जिनका उत्तर ढूँढ़ने की कोशिश की जायेगी वर्तमान प्रपत्र में। गरीब कभी अपनी गरीबी के लिए स्वयं जिम्मेदार नहीं होता बल्कि यह समाज में व्याप्त असमानओं और अवसरों का अभाव है जो गरीबी के लिए संयुक्ततः जिम्मेदार है। यद्यपि कई अर्थशास्त्रियों का यह मानना है कि गरीब, सुस्त और आलसी होते हैं और उनका वर्तमान जीवन स्तर उन्हें गरीब बनाये रखता है। अतः गरीबी उन्मूलन हेतु जब भी नीतियों एवं कार्यक्रमों का निर्धारण करना हो, उक्त तथ्यों को ध्यान में रखना नीतिगत सफलता की एक पूववर्ती शर्त मानी जायेगी।

गरीब और अमीर का निर्धारण करने वाली गरीबी रेखा कितने तर्कसंगत आधारों पर निर्मित की जाती है ? यह प्रश्न अभी तक अनुत्तरित है। चूँकि गरीबी का एक गम्भीर दुष्परिणाम शक्तिविहीनता भी है जिसमें एक गरीब को असहाय और बेचारा माना जाता है। उसके साथ भेद-भाव पूर्ण व्यवहार किया जाता है। परिणाम स्वरूप उसके शरीर, मन और जीवन पर गरीबी की काली छाया मंडराती रहती है और वह असमय ही काल का ग्रास बन जाता है।

गरीब की दशा पर राजनीति की रोटी सेकने वालों की अपनी एक अलग ही दुनिया है। आजकल की राजनीति में फुस्सी पटाखा साबित हो रहे एक युवा नेता का यह बयान कि ''गरीबी एक मानसिक दशा है। ''विचारणीय है। तभी तो एक प्रौढ़ प्रबुद्ध और प्रधानमंत्री पद का दावेदार नेता कहता है कि कुपोषण की शिकार सारी महिलायें विश्व सुन्दरी बनने की तैयारी में है। ऐसे वक्तव्यों से ज़ेहन में यह लाइन सहसा ही आ जाती है कि ''एक शहंशाह ने बनवा के हँसी ताजमहल --- हम गरीबों का उड़ाया है मज़ाक।'' निहितार्थ यह है कि हमने गरीब और गरीबी को समझा तो बहुत लेकिन उसे दूर करने की जगह पर बनाया है विषय चर्चा-परिचर्चा का --- हास्य और व्यंग्य का --- हँसी और ठिठोली का --- और अभिव्यक्त किया है कभी हृदयविदारक---कारूणिक और मर्माहत करने वाली कविता के माध्यम से तो कभी उदारतावादी आर्थिक नीतियों के क्रियान्वयन से।

अतः प्रस्तुत प्रपत्र यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि मूल रूप से सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक लक्ष्य, संस्थागत साधनों का अभाव और सरकारी नीतियाँ ही कमोवेश रूप से गरीबी के मूल कारक है। अतः इनमें जब तक सुधार नहीं होगा तब तक चाहे उत्तर प्रदेश का सन्दर्भ हो चाहे अमेरिका या इग्लैण्ड का सन्दर्भ हो गरीबों की दशा में सकारात्मक परिवर्तन संभव नहीं है।

गरीबी को मानव अधिकारों के उल्लंघन का कारण एवं प्रभाव दोनों माना जाता है। अतः मानव अधिकारों एवं मौलिक अधिकारों के साथ राज्य के नीति-निदेशक तत्त्व सम्बन्धी समस्त दस्तावेजी प्रावधानों को गरीबों की दशा के सन्दर्भ में उद्धरित किया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्याय की विशुद्ध विधिक व्याख्या को 'सामाजिक न्याय' की तरफ केन्द्रित करने की मंशा का भान उसके द्वारा बंधुआ मजदूरी, बाल श्रमिक, असंगठित श्रमिक, परिव्रजन करने वाले श्रमिक, शरणार्थी, वेश्या इत्यादि के सन्दर्भ में दिये गये निर्णयों से होता है।

नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रम में प्रथम प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरू का कथन उद्धरित करूँ तो स्पष्ट होगा कि आपके अनुसार भारत की सेवा का तात्पर्य करोड़ो पीड़ित व्यक्तियों की सेवा से है। नीतियाँ ऐसी हो जो गरीबी, अज्ञानता, बीमारी एवं अवसरों की असमानता को खत्म करने वाली हों। जिनसे हर व्यक्ति की आँख का आँसू पोछा जा सके। ''गरीबी हटाओं'' और ''गरीबी उन्मूलन'' जैसे नारों के अन्तर्गत विभिन्न पंचवर्षीय योजनायें बनाई गई और राष्ट्रीय रोजगार कार्यक्रम, मनरेगा अन्त्योदय, जननी सुरक्षा योजना, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, बाल्मीकि अम्बेडकर योजना, स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्व-रोजगार योजना जैसी तमाम योजनाओं को सरकार के द्वारा संचालित किया गया है।

गरीबी उन्मूलन के सकारात्मक प्रयासों को चरणबद्ध तरीके से चलया जाना चाहिये मसलन सबसे पहले बच्चों के लिए शिक्षा एवं उद्यमिता प्रशिक्षण का कार्यक्रम चलाना चाहिए। माता-पिता को योग्यतानुसार विभिन्न लघु उद्योगों में प्रशिक्षण प्रदान कर उन्हें स्वाबलम्बी बनाने की दिशा में कार्य करना चाहिए। जन्म एवं मृत्यु का अनिवार्य पंजीकरण करवाकर उन्हें सामाजिक सुरक्षा की गारंटी प्रदान करनी चाहिए। इसके अलावा अन्य ऐसे सभी उपाय जो विकल्प के रूप में अब तक सुझाये गये हैं उनका छोटे-छोटे समूहों पर प्रयोग करना चाहिए और प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर उनका आगे क्रियान्वयन करना चाहिए।

सबसे महत्वपूर्ण एवं कारगर कदम के रूप में कुपोषण निवारण योजनाओं को क्रियान्वित करना चाहिए। देश के सभी उद्यमियों, उद्योगपतियों, कुलीन एवं अभिजात्य वर्ग के लोगों के साथ मिलकर ऐसी योजनायें बनानी होगीं जिनमें वह अनुपातिक रूप से गरीब गाँव के कल्याणार्थ कार्य करें और जिस उद्यमी द्वारा जितने गाँवों को आत्मनिर्भर बनाकर गरीबीरेखा से ऊपर लाया जाये उस आधार पर उसे विभिन्न प्रकार की मानद उपाधियों एवं पुरस्कार से सम्मानित किया जाना चाहिए। यह राष्ट्रीय स्तर पर किया गया एक ऐसा विशिष्ट एकीकृत प्रयास होगा जिसमें सभी अपनी क्षमता के अनुसार समर्थन प्रदान करेंगे। यदि पूरा देश एकजुट होकर गरीबी उन्मूलन हेतु उसी प्रकार से आन्दोलित हो जाये जैसा स्वाधीनता प्राप्ति के समय हुआ था तो वह दिन दूर नहीं जब उत्तर प्रदेश से अमेरिका तक पूरा विश्व यह भूल जायेगा कि 'गरीबी रेखा' नाम की भी कोई चीज होती है। वह दिन इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों में अंकित किया जायेगा जब गरीब व्यक्ति भी अपने मानव अधिकारों को महसूस कर सकेगा और उच्चमानवीय मूल्यों का अनुशीलन करने में अपने आप को सक्षम समझेगा।

प्रस्तुत प्रपत्र इस बात पर ध्यान इंगित करता है कि गरीबी को परिभाषित और पुनर्परिभाषित करने का जो प्रायोजित सरकारी दायित्व निभाया जाता है वह इसलिए क्योंकि सरकार की वास्तविक ढ़ाँचागत स्थिति में परिवर्तन संभव नहीं है। गरीबी एक जटिल और दुरूह संकल्पना है। यदि दार्शनिक दृष्टिकोण से गरीबी की संकल्पना को समझ कर उसका आकलन किया जाये तो यह बात बखूबी स्पष्ट हो जाती है कि यह केवल आर्थिक दृष्टिकोण से व्याख्यायित नहीं की जा सकती, बल्कि उसका विस्तार बहुपक्षीय एवं बहुआयामी है। आज यह कहना कहीं से गलत नहीं है कि यदि हम शिक्षित नहीं है तो भी गरीब है, यदि दीक्षित नहीं है तो भी गरीब है। यदि नैतिक मूल्यों के अनुगामी नहीं है तो भी गरीब हैं और यदि मजहबी, जातिवादी और संकुचित मानसिकता के पोषक रूढ़िवादी हैं तो भी गरीब है। अतः आवश्यकता है आत्मावलोकन की और जब हम सभी अपना आत्मावलोकन करेंगें तभी गरीबी के बदनुमा दाग को धुलने मे सफलता प्राप्त करेंगें।

गरीबी उन्मूलन हेतु अब तक जो सुझाव प्रमुख रूप से दिये गये हैं वह इस प्रकार हैं- पहला, विद्यमान योजनाओं को पारदर्शिता एवं जवाबदेही के साथ क्रियान्वियत किया जाना चाहिये। दूसरा, गरीबी उन्मूलन हेतु कुछ नयी योजनाओं का प्रारूपण करना चहिये। इस क्रम यह भी सुझाया जा सकता है कि लोकतंत्र की जड़ों को मजबूती प्रदान करना और एक राष्ट्रीय चेतना विकसित करना जिसमें हर व्यक्ति जिस हद तक और जितनी शिद्दत से इसे एक लोकोपकारी कार्य मानकर योगदान दे सके, अपना कर्तव्य समझते हुए करे। अन्यथा केवल परिभाषाओं एवं समितियों का गठन कुछ इस प्रकार का असफल प्रयास होगा कि यदि हम अपराध खत्म नहीं कर सकते तो आपराधिक विधि से उन कृत्यों को अपराध मानने की परिभाषा को ही हटा दें। अब वह कृत्य पाप अनैतिकता, दुराचार या जो कुछ भी हो, अपराध नहीं होगा क्योंकि न तो वह दण्ड सहिता में परिभाषित है न ही उसके लिए कोई दण्डिक विधान है।

ठीक उसी तरह आज एक विश्वविद्यालय का प्रोफेसर जो तकरीबन एक लाख रू0 मासिक की तनख्वाह प्राप्त कर रहा है उद्योगपतियों के नजरिये से गरीब है। क्योंकि 12 लाख रू0 तक का कई लोगों का केवल चश्मा आ जाता है अब 'सन्तोषं परमं सुखं' के नीति वाक्य को 'मुद्रां परमं सुखम' से तब्दील कर दिया गया है। प्रख्यात अर्थशास्त्री अमर्त्यसेन एवं अन्यों ने इस बात का पुरजोर समर्थन किया है कि जब भी एक समाज के विभिन्न स्तरों के बीच आमदनी का अनुपात 5:1 से ज्यादा होगा भ्रष्टाचार बढ़ेगा। यही बात किसी कवि की इस लाइन से भी चरितार्थ होती है कि 'चोरी न करें, झूठ न बोले, तो शाम को चूल्हे पर क्या उसूल पकायेंगे। निहितार्थ यह है कि बढ़ती अपराधिता के चक्रव्यूह को तोड़ने के लिए हमें गरीबी का समाजशास्त्र समझना ही होगा।

आखिर क्यों एमिले दुर्खीम का प्रतिमानविहीनता का सिद्धान्त यह स्थापित करता है कि जब भी समाज में संक्रमण की स्थिति आयेगी, श्रम-विभाजन नितान्त असंगठित तरीके से होगा अपराधिता बढ़ेगी। राबर्ट के0 मर्टन को कहना पड़ा कि सांस्कृतिक मूल्य एवं संस्थागत साधनों के बीच की खाई जितनी गहरी होगी उतने ही प्रकार के नये-नये विचलनकारी व्यवहार सामने आयेंगे। अल्बर्ट के0 कोहेन का अपचारी अपसंस्कृति का सिद्धान्त एक स्कूली बालक और एक श्रमिक के बीच के अन्तर को अपचारिता का मूल आधार मानता है।

अतः चुनौती इस बात की है कि विकल्प तलाशा जाये। अन्यथा गरीबों की गरीबी एक ऐसे चक्रवाती तूफान की तरह आयेगी जिसमें सब कुछ खत्म हो जायेगा। अतः आवश्यकता इस बात की है कि समय रहते ही हम चेत जायें और सोच समझकर नीतियों का निर्धारण करें।

References

B.C Nirmal (2006), *"Poverty and Human Rights: An Indian context,* "Indian Journal of International Law,46.

B. N. Arora (11 Dec 2004), *"Human Rights Day is Celebrated, but Right to Food continues to be denied*, "Mainstream

Chapal Mehra (2013), *"When the definition of Poverty harms the poor"* The Hindu, Tuesday, December 10.

Genugten (eds) the Poverty of Rights (2001)

K. S. Chalam (2003), *"Politics, Power and Poverty in South Asia,* "Economic and Political Weekly, October 4.

Lucy Williams and others (eds) Law and Povery (2003)

L. M. Singhvi (1973) (ed.) *Law and Poverty : Cases and Materials*

The Hindu, Friday, Nov 29, 2013."Anti Poverty Programmes are leaky....."

Upendra Baxi (1988), *Law and Poverty : Critical Essays*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,89-97**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 फरवरी 2014

कृष्णा सोबती द्वारा रचित संस्मरण 'हम हशमत' के तीनों भागों की भाषा शैली

अंजू बाला*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *कृष्णा सोबती द्वारा रचित संस्मरण 'हम हशमत' के तीनों भागों की भाषा शैली* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंजू बाला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

कृष्णा सोबती नई कहानी के आरम्भिक दौर में, किंतु नई कहानी आंदोलन की छाया से बाहर अपनी शैली, और अपने विशिष्ट तेवर के साथ उभरी एक सशक्त लेखिका है। उन्होंने अपने युग की आकांक्षाओं, चेतनाओं और जटिल समस्याओं को प्रतिबिम्बित करने के लिए संस्मरण विधा को माध्यम बनाया। जब इस विधा पर उन्होंने अपनी कलम उठाई तो 'हम हशमत' संस्मरण की रचना की। इस संस्मरण के अन्तर्गत कृष्णा सोबती ने अपने अक्खड़ स्वभाव द्वारा अपने समकालीनों के विषय में लिखा है। सृजन के क्षेत्र में कृष्णा सोबती स्त्री-पुरुष को दो अलग-अलग खांचों में विभक्त करने की पक्षधर नहीं है। प्रत्येक सर्जक केवल सर्जक है- स्त्री या पुरुष नहीं। 'हम हशमत, में उनकी भाषा का तेवर उनके व्यक्तित्व द्वारा निर्मित है। अपने संस्मरण में उन्होंने अपने को 'हशमत', कहकर सम्बोधित किया है। ऐसा उन्होंने इसलिए किया ताकि वह स्त्री तथा पुरुष के बीच व्याप्त भेदभाव को मिटा सके। उनके शब्दों में 'रचनात्मक क्षमता और मानसिकता के स्तर पर इन लक्षण और इकाइयों का वर्गीकरण और विभाजन उचित नहीं।'' वे यह मानती है, कि लिंग के आधर पर नारी और पुरुष लेखन को परस्पर अलग करने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व की कुल जमा पूँजी की पड़ताल है, जो प्रत्येक लेखक खोज और अनुभव के बल पर अर्जित करता है।

भाषा शैली

संस्मरणकार, शिल्प के माध्यम से जिस प्रभाव की सृष्टि करता है, उसमें भाषा का अत्यंत महत्वपूर्ण योग रहता है। भाषा के माध्यम से ही विषय को एक निश्चित शिल्प के द्वारा संस्मरण में प्रस्तुत किया जाता है। विषय के रूप में जितने ही सुन्दर विचारों को संस्मरण में ग्रहण किया जाएगा, उतनी ही सुंदर भाषा की उसमें सहज ही सृष्टि होगी। ''भाषा हमारे सम्प्रेषण का महत्वपूर्ण माध्यम और भावबोध का अन्यतम साधन हैं। भाषा के सहारे व्यक्ति न केवल अपने विचार व्यक्त करता है

* [एम.फिल. हिन्दी] दिल्ली विश्वविद्यालय (दिल्ली) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

बल्कि उसे दूसरे तक सम्प्रेषित भी करता हैं।''[1] ''भाषा सम्प्रेषण का माध्यम ही नहीं अपितु हमारे भावबोध का साधन भी हैं। हम सोचते है तो भाषा के सहारे और किसी बात को समझते-समझाते हैं तो भी भाषा के सहारे हमारे स्मृतिकोष और चिंतन प्रक्रिया का आधार भाषा है। मानव-मन की सृजनात्मक शक्ति की अनुपम देन के रूप में यह भाषा की बाह्य जगत् और भावबोध के बीच सेतु का काम करती है।''[2] इस प्रकार भाषा अपने मन के भावों का सशक्त रूप से सम्प्रेषित करने का सहज तथा सरल माध्यम है।

कृष्णा सोबती द्वारा रचित 'हम हशमत' (तीनों भागों) की भाषा का तेवर उनके निज द्वारा निर्मित है। अपने संस्मरण में उन्होंने अपने को पुल्लिंग रूप में 'हशमत' कहकर संबोधित किया है। ऐसा उन्होंने इसलिए किया ताकि वह स्त्री तथा पुरुष के बीच व्याप्त भेदभाव को मिटा सके, उनके शब्दों में 'लिंग-भेद को पाटने के लिए नई भाषा का आविष्कार करना होगा। इसलिए अपने वजूद में 'हशमत की हाज़री।'[3] जगदीश चतुर्वेदी के अनुसार 'हमें नाम के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। लेखन किसी स्त्री का है तो जरूरी नहीं कि वह स्त्रीत्व के पक्ष में हो, इस तरह किसी मर्द का लिखा जरूरी नहीं पुरुषवादी हो।[4] कृष्णा सोबती की भाषा उनके स्वभाव द्वारा निर्मित है उनकी भाषा अन्य स्त्री लेखिकाओं से भिन्न है वह अपने ऊपर स्त्रीत्व को हावी होने नहीं देती। हम हशमत की भाषा बोलचाल की भाषा के निकट है किंतु उसमें सृजनात्मकता का तत्व समाहित है उनके शब्दों में 'रोजमर्रा इस्तेमाल की भाषा से रचनाकार का संबंध दोहरा है। द्वंद्वात्मक है। कोई भी रचना बोली जाने वाली जीवंत भाषा के जितने पास होती है, उतनी ही उसकी अपनी जीवंतता होती है। बोलचाल के ज्यादा पास होने की कोशिश भाषा की सृजनात्मकता की एक महत्वपूर्ण शर्त है। मगर साथ ही जो रोजमर्रा की भाषा का घिसा-पिटापन है उससे बचना भी उतना ही जरूरी है।[5] डॉ0 हरिमोहन शर्मा के शब्दों में, 'सामान्य बोलचाल की भाषा साहित्य भाषा का आधार होती है। साहित्यकार की निगाह निरंतर बोलचाल की भाषा एवं उसकी लय पर लगी रहती है। किंतु कभी-कभी साहित्यकार अपने रचना संसार में ऐसा तल्लीन हो जाता हैं अथवा विषयवस्तु या कथ्य का आग्रह उसे बोलचाल की भाषा से दूर ले जाता है तो वह साहित्यभाषा उसी मात्रा में जनमानस से दूर, कृत्रिम और औपचारिक हो जाती हैं। इसके बावजूद साहित्य की दृष्टि बोलचाल की भाषा से हटती नहीं।'[6] हम हशमत की भाषा प्रभावमयी भाषा है जो पाठक समुदाय को बांधे रखने में समर्थ हैं। स्थितियों, भावनाओं और अवसरों के अनुसार भाषा का रूप परिवर्तित होता रहता है भाषा कभी सहज, कभी नाटकीय, कभी भावपूर्ण तो कभी व्यंग्यपूर्ण बन जाती है। कृष्णा सोबती की भाषा में पाठकों से मित्रता का भाव बनाकर चलती है। हम हशमत के तीनों भागों में वह पाठक वर्ग को 'दोस्त, कहकर सम्बोधित करती हैं। उदाहरणार्थ ''दोस्तो'', नागार्जुन में हँसने की, हँसाने की, हँसी को फैलाने की, दूसरों को गुदगुदाने की गहरी तमीज़ हैं।''[7] 'शिकवा-शिकायत खत्म दोस्तों अब आपसे इजाजत चाहते हैं। प्रतिभा की नोंक पर एक टुल्ला और लग गया तो पंचानन में फिर मुलाकात होगी।'[8]

हम हशमत के तीनों भागों की भाषा के पीछे व्यंग्य झाँकता हुआ प्रतीत होता है। वर्तमान साहित्यिक युग खुशामद तथा चाटुकारिता का युग हैं अतः लेखिका ने साहित्य जगत् के यथार्थ पर व्यंग्य किया है। जिससे भाषा में लक्षणा तथा व्यंजना हैं और जिससे भाषा को गरिमा तथा शक्ति मिलती की हैं। 'हम हशमत' की भाषा विवेक को जागृत करने वाली भाषा है। साहित्य जगत् में लेखक की यथार्थ स्थिति तथा साहित्य में नैतिकवादी मानदण्डों पर व्यंग्य करती हुई लेखिका व्यक्त करती है 'हम जानते हैं, तुम हमसे मिलने पिछवाड़े से आओगे ताकि तुम्हें कोई हमारे पास देख न ले। मित्रता समझ-बूझकर करोगे, पाँव छुओगे, घुटने दबाओगे तब भी हम तुम्हारी प्रकाशित कृतियों को वार्षिक सूची में जोड़ना न चाहेंगे। हम तो उन कृतियों के रखवाले हैं जो लिखी जाने से पहले ही श्रेष्ठ करार दे दी जाती हैं। वही संस्कारी वृत्तियों वाली सभ्य शालीन गहरी कृतियाँ साहित्य के अहाते में प्रवेश पा सकती हैं। राष्ट्रीय नैतिकता का सवाल हैं।[9] इसी तरह लेखकों की दयनीय एवं लाचार स्थिति तथा स्वार्थ प्रवृत्ति पर भी व्यंग्य किया गया है 'कुछ लगातारी लेखक' अपने धंधे के हित में आलोचकों को राशिफल जाँच रहे हैं। कोई पुरानी अँगुलियों के लिए नई अँगूठियाँ खोज रहे हैं। कोई पुरानी अँगुठियों के लिए नए नगीने तलाश रहे हैं। नए सफरों की उम्मीद में जूते चमकवा रहे हैं। कुछ अपने माप से बड़ी जूतियाँ हथिया रहे हैं। कुछ अपनी चप्पलें सियासी फाटकों पर सजा रहे हैं। कोई परिवार सेवार्थ जेबी संस्करण निकालने में व्यस्त है। रचना अपनी अस्मिता समेट हाशिए पर और रचनाकार साहित्य संस्थानों और संगठनों की धींगामुश्ती में। सिद्धांतो के नाम पर अब लड़ाइयाँ नहीं लड़ी जातीं। मशालें नहीं जलती, न ही सिरों पर शहादत के पटके ही बाँधे जाते हैं। मुद्दों के नाम पर कुछ बहरूपिए

धुँए उठते हैं और विधिवत धूप जलाकर बुझा दिए जाते हैं![10] संस्मरण में दिल्ली शहर की स्थिति को व्यंग्य के माध्यम से इस तरह चित्रित किया हैं, ''दिल्ली को देखकर क्या कोई अंदाजा लगा सकता होगा कि अलीगंज-जैसी कोई बस्ती भी यहाँ होगी ? नालियाँ, गंदगी, मक्खियाँ! फिर भी शुक्रगुज़ार हूँ कि रिहायश के लिए कमरा है। चिट्ठियाँ पाने के लिए पता!''[11] इस तरह व्यंग्य के प्रयोग ने हम हशमत की भाषा को जीवंत बनाया है। कृष्णा सोबती ने व्यंग्य का सहारा लेकर वर्तमान साहित्य जगत् की स्थितियों को प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त किया है।

'हम हशमत' द्वितीय व तृतीय भाग की भाषा प्रथम की तुलना में कहीं-कहीं अधिक चिंतन की भाषा है जो अपने बौद्धिक संस्कार से परिष्कृत हैं। इस भाषा में गंभीरता है तथा क्लिष्ट शब्दावली होने के कारण यह भाषा बोलचाल की भाषा से भिन्न हैं। उदाहरणार्थ ''विरोधभासों के समन्वय और सामंजस्य, प्रतिबद्धता और पक्षधरता की रेल पर दौड़ने लगे तो मानवीय संवेदना और उसकी संभावित आत्मीयता अंतर्विरोधों का सरलीकरण करने लगती है। साहित्यकार सांस्कृतिक और सामाजिक समुदाय द्वारा भी नियंत्रित होते हैं और वही कमोबेश रचनात्मकता के स्तर पर चिंतन, विचारधारा और संवेदना में अभिव्यक्त होते हैं।''[12] ''इस बदलती प्रक्रिया ने लेखकीय अस्मिता की एकान्तिकता को व्यक्ति की आत्मीयता और वैचारिकता के बदले ऊपरी सँवरन से चमका दिया है। लेखकीय अन्तर की अनुभूति, कल्पनाएँ और उनके शिरानाल का तरल संवेदन शुष्क हो उसकी ऊपरी सँवरन में प्रत्यक्ष होने लगे और लेखन पर तंत्र और राजनीति की व्यावहारिक मूल्य और उसके यथार्थ का दबाव ज्यादा होने लगे तो राजनीति की आक्रामक सामाजिकता साहित्य पर हावी हो जाती हैं।''[13] किंतु भाषा की यह क्लिष्ठता संपूर्ण संस्मरण में नहीं हैं उदाहरणार्थ ''अश्क' की दोस्ती और दुश्मनी को जाँचकर इतना तो कहा ही जा सकता है कि 'अश्क' पहले अपना कंधा इस्तेमाल करता है, फिर दूसरों का। उसे न अपने को इस्तेमाल करने से परहेज़ और न दूसरों को।''[14] इस तरह यह भाषा विचारों तथा भावों के अनुरूप प्रवाहमयी सहज भाषा है।

'हम हशमत' के तीनों भागों की भाषा पात्रानुकूल भाषा है। खान गुलाम अहमद की भाषा का एक उदाहरण देखिए 'कैसा बात करता है साहिब! कश्मीरी होकर आसमान को देखकर क्या हम बताने नहीं सकता कि बर्फानी हवा में क्या है। ओले है, बर्फ है, तूफान है, अन्धड़ है कि हवा खाली साँय-साँय करता है।'[15] इसी तरह संस्मरण की भाषा वाक्य रचना विषय के अनुरूप हैं। जिसमें कहीं छोटे-छोटे और कहीं बड़े-बड़े वाक्यों की रचना की गई हैं। जहाँ जिज्ञासा मूलकता हैं वहाँ कई प्रश्नवाचक वाक्यों की रचना की गई है उदाहरणार्थ 'श्रीमान, स्थिति शोचनीय है। इस बात पर विचार करने के लिए गोष्ठी से काम नहीं चलेगा। सम्मेलन बुलाना होगा।

क्यों साहिब, यह सम्मेलन किस बैनर तले होगा ?/ अखिल भारतीय हिंदी लेखक शोषित संघ। सम्मेलन के लिए आर्थिक सहायता कहाँ से प्राप्त की जाएगी ?/ अखिल भारतीय हिंदी लेखक शोषित संघ से।

आप इनमें से किससे जुड़े हैं ?''[16] इस तरह संस्मरण की भाषा में छोटे-छोटे संवादों का भी प्रयोग किया गया हैं जिसमें नाटकीयता तथा रोचकता का है ये संवाद मनः स्थितियों को बड़ी गहराई से पकड़े हुए हैं और कथ्य को सम्प्रेषित करने में पूर्ण सक्षम हैं 'अपनी मंजिल बतायी कि टके-सा जवाब मिला

'गड्डी उधार नहीं जायेगी। 'पर क्यों ?/ 'कह जो दिया। 'कभी आप स्टैण्ड पर पहुँचे। 'ओए नम्बर किसका!/ 'ओ ले जा ओए-ले भी जा-ओ उठा ले, उठा ले सवारी। तेरे घर की तरफ की है।'[17]

'हशमत साहिब, चाय के लिए मिलें तो कैसा!/ बढ़िया रहेगा। कहाँ मिलें!/ मेडन्स-कॉफी-शॉप। ठीक पाँच। जी!'[18]

- 'गर्मजोशी से बोले-आप इस मौसम में यहाँ!
- और आप इस बरसात में कहाँ से लौट रहे हैं?
- माल से लौट रहा हूँ।
- हम माल जाने की तैयार में हैं। क्यों न एक-एक चाय हो जाए!
- आप यहाँ बैठना पसन्द करेंगे! आपको तो अटपटा लगेगा।
- भला ऐसे क्यों कह रहे हो जयदेव!'[19]

'हम हशमत' की भाषा काव्यमयी भाषा हैं। कृष्णा सोबती की भाषा काव्यात्मक प्रभाव से अछूती नहीं है 'कहते हैं कि वासना नश्वर है, प्रेम अमर। दोनों में कोई मौलिक विपर्यय है या नहीं, नहीं मालूम किंतु यदि ये दो हैं तो यह बात कितनी झूठी है। प्रेम का एक ही जीवन है। वह एक बार होता है और जब मरता है तो मर जाता है। उसे दूसरा जीवन नहीं मिलता।'[20] भावुकता तथा दु:ख के प्रसंगों को काव्य पंक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है- 'जैसा लिखा, जो भी लिखा, लिख सका, अपने हस्ताक्षरों में 'मैं' 'मैं' ही हूँ।

चौकिए नहीं- मैं लोप हो गया हूँ, आपको दीख नहीं सकता-दीख/ नहीं रहा 'मगर हूँ.....।' श्रीकांत तुम हो। हो। तुम हो न!/ तुम रहोगे।'[21]

संस्मरण की भाषा की रचनात्मकता तुक, लय, ध्वन्यात्मकता के समावेश से भी है। 'हम हशमत' की भाषा में यह सभी गुण विद्यमान है :

लयात्मकता :

(1) 'हशमत को तुम भाते थे, क्योंकि तुम चाय को चाय की तरह चाहते थे।'[22]
(2) 'अज्ञेय ने जीवन को जितना जिया उससे उतना लिया भी और उतना ही दिया भी। उगाहने और निबाहने में, जमा और ख़र्च के खातों के अनुरूप, खुले हाथों समेटा और खुले हाथों अपने लेखक पर न्यौछावर भी किया।[23]

तुकबंदी :

(1) 'याहू-याहू जो चाहूँ सो पाऊँ वाला मंजर ठहरा।'[24]
(2) 'साबुन की नई टिकिया की तरह ही हर बार फेन का चमत्कार! बार-बार, हर बार!'[25]

ध्वन्यात्मकता :

(1) खींच-मीच, ची-पों, हाथापाई, बांटो की खिचाई, पाँव की मुड़ाई, जेबों की कटाई, बटुओं की उगाई- यह था दिल्ली का सरताज बस-स्टैण्ड लालकिला।[26]
(2) हशमत आपकी आतंकवादी घुस्सा-घुस्सम, गुत्थम-गुत्था की सराहना करते हैं।[27]

भाषा में उर्दू शायरी का प्रयोग

कृष्णा सोबती को शायरी का बेहद शौक रहा है जिसके कारण उनकी भाषा में उर्दू शायरी का प्रयोग देखा जा सकता है- 'आबरू क्या खाक उस गुल की कि गुलशन में नहीं। है गरीबाँ नंग पैराहन जो दामन में नहीं।'[28]

'देखो निगाह-ए शौक से/ दिल्ली के नजारे/ तहजीब की जन्नत है/ यह यमुना के किनारे।'[29] 'बाज आए/ मुहब्बत से/ उठा लो/ पानदान अपना।[30]

भाषा में गालियों का प्रयोग

'हम हशमत' की भाषा में गालियों का धड़ल्ले से प्रयोग हुआ है। लेखिका गालीयुक्त भाषा का प्रयोग करते समय सकुचाती या हिचकिचाती नहीं हैं :

(1) 'साले' यह है तेरी साहित्य-प्रेमी और आलोचक की दृष्टि'[31]
(2) दुनिया में कौमे ही दो हैं- एक आरामजादों की और दूसरी हरामजादों की।'[32]
(3) 'हशमत ने एक ही ठिकाने के इन दो मुजावरों को देखा ओर सख्ती से अपने को धमका दिया। यार तुम क्यों इन पर नज़र रखे हो। भटकने दो सालों को।'[33]

हम हशमत की भाषा में मुहावरे, सूक्तियों तथा लोकोक्ति का समावेश भी है।

मुहावरें : दहला फेंकना, आँखे चुराना, हिरणो के झुंड दौड़ाना, मस्तक चमक उठना, हवाई बातें करना। सकपका जाना, मुँहमियाँमिट्ठू बनना, टंगड़ी देना, तूती बोलना, घिग्गी बंधना, चिकोटी काटना, नाच न जाने आँगन टेढ़ा, पेंच लड़ाना, जलन के मारे कुम्हला जाना, पलकों में बिठाना, जूती चाटना, आगबबूला होना, कन्धे से कन्धा मिलाए चहकना, हाथ

मलना, खीसें निपोरना।

कहावत :

(1) यह कौवा हँसो में बैठ सके।

(2) जो लाहौर गया नहीं, वह पैदा ही नहीं हुआ।

लोकोक्तियाँ :

(1) धरती के तीस बरस और किसी को मथ डालनेवाले शनि का एक बरस।

सूक्तियाँ :

(1) टकसार और तरावट में रसी-बसी हँसी में एक खनक पैदा हो ही नहीं सकती। अगर किन्हीं दो ने साझेदारी में जिंदगी का मीठा-कडुवा एक साथ न चखा हो।

(2) कानून और साहित्य के रास्ते जाहिर तौर पर बेशक अलग-अलग हैं मगर दोनों की मंजिल एक है। सत्य की खोज, सत्य की स्थापना।

(3) मूल्य और आस्थाएँ जन्मते-पनपते कहीं और है और पनपकर उजागर कहीं और ही होते है।

(4) प्यालों में चम्मच चलाकर कहा-वक्त आपका है, किसी और का नहीं और काम भी आपका है, किसी और का नहीं।

इस प्रकार 'हम हशमत' की तीनों भागों की भाषा में मुहावरे, लोकोक्तियों तथा सूक्तियों का प्रयोग कृत्रिम नहीं हैं अपितु यह साधारण भाषा में आए हैं।

शब्द भंडार : 'हम हशमत' तीनों भागों की भाषा में अंग्रेजी, उर्दू, ग्रामीण, पंजाबी तथा संस्कृत शब्दावली का समावेश हुआ है साथ बातचीत के स्तर को बनाए रखने के लिए युग्म शब्दों का भी प्रयोग हैं :

अंग्रेजी शब्दावली : 'इमोशनल-टैम्परेचर, इण्टेन्सिटी, सोफिस्ट्रीकेटेड, सिगरेट, इन्सटालमेण्ट, ट्रिप इन्कम, एन्लार्जमेण्ट, टेपेस्टी इन्टलेक्चुअल, कमिटमेण्ड, ट्रेजडी, जुगफिया, सेन्सिबिलिटी नोटेशन, एल्टीमेट एम, इगनोर, डयनामाइट, कंट्रास्ट, एंटीरोमांटिक, ट्रीटमेंट, ब्यूरोक्रेट, डेमोक्रेट, रिलेशन्स, हॉबी, इनोवेटिंग, म्यूज़ियम, ब्लकोट, एश-ट्रे, आइडेंटिटी, पोलीथीन, गेस्ट हाउस, सिन्थेटिक, लिफ्रट, स्टडी, हेडक्वार्टर, रेजिमेट्स, इन्टरव्यू, डिवलेपिंग, सोसाईटी।

उर्दू शब्दावली: खलीफा, इतवार, मुकम्मल, दास्ताँ, मियाँ, बरखुरदार, खिज़ा, महबूबाएँ, शख्सियत, दस्तावेज, खिदमत, मज्मून, खुदा-न-ख्वास्त, अल्फाज, रंजिश, तकदीर, तमन्नी, वसीयत, तशरीपफ, मुल्क।

ग्रामीण शब्दावली : मणके, केतलियाँ, बैण, दुलल्थड़, अँगीठियाँ, भक्ख-भक्ख, कहाड़ियाँ वीरबाणी, ओढ़नी, बाबली, गोबर, कण्डा, चंगीरी, गूंथना, चिलम, मण्डली, भैंसा, छमाही, घुण्डी।

पंजाबी शब्दावली : पिण्ड, चंगा, कुडियाँ, काकियाँ, मियाँ, मेमाँ, गड्डी, आँखिडयाँ, सोहणी, मंजियाँ, राँगली, चाँटियाँ, अस्सी, जगरातयाँ।

संस्कृत शब्दावली : भ्रम, कर्त्तारम, अकर्त्तारम, मर्म, तप, धर्मोन्माद, अमोद्य, नियति, समष्टि, व्यष्टि, दामोदर।

अश्लील शब्दावली : पाद, स्तन, लुच्चेपन।

युग्म शब्द : अटा-पटा, चिर-परिचित, छू-छूकर, लड़के-लड़कियाँ, हँसते-हँसते, चटपटी-अटपटी, असली-नकली, भारी भरकम, ताना-बाना, पचास-पचपन, खींचा-तानी, अबड़-खाबड़, कँकरीला-पथरीला, उठाना-गिराना-बनाना-बिगाड़ना, खुल्लम-खुल्ला, भयभीत भया क्रांत, दौड़ता-हाँफता, लाँधता-फलाँगता, आपा-धपी, अफ़रा-तफ़री।

बिम्ब और प्रतीक

कृष्णा सोबती ने अपनी अभिव्यक्ति को सशक्त रूप देने के लिए भाषा में बिम्ब तथा प्रतीक का प्रयोग किया है। संस्मरण जीवन की महत्वपूर्ण स्थितियों, घटनाओं को स्मृति की सहायता से चयन करता है तथा उन अनुभूतियों को भाषा के माध्यम से व्यक्त करता हैं जिसमें बिम्ब और प्रतीक उस अभिव्यक्ति को और अधिक सशक्त तथा प्रभावशाली बनाते हैं।

'हम हशमत' संस्मरण में 'बिम्ब' का प्रयोग अनेक स्थानों पर हुआ है। बिम्बों के प्रकारों के आधार पर इन्हें निम्न रूप से देखा जा सका है :

(1) दृश्य बिम्ब : इस बिंब-विधान में हमारे नेत्रों के समक्ष वस्तु-विशेष का रंग-रूप तथा विभिन्न क्रियाओं व मानव चेष्टाओं का चित्र सा खिंच जाता है। निर्मल वर्मा के कमरे का चित्रण कृष्णा सोबती इस प्रकार करती हैं जिससे पाठकों के समक्ष कमरे का दृश्य उभरने लगता हैं 'निर्मल के कमरे में डेरों किताबें है। फर्श पर उनका बिस्तर है...। कोने में छोटी- सी रैक है। चाय-कॉफी, चीनी, कुछ बिस्कुट,

चीज, डबल रोटी ओर छोटी-सी चौकी पर हाट-प्लेट। मेहमानों के लिए कुर्सी। एक कोने में पढ़ने की टेबल। दरवाजे पर ढिलाई से लटकता परदा। कमरे की पूरी बनावट देखकर हमें बहुत अच्छा लगा। कहीं कुछ दिखावटी या चौकाने वाला नहीं। साधारण सादगी। रहने का सिर्फ जुगाड़-भर।'[34] इसी प्रकार सत्येन के घर का दृश्य भी आँखों के समक्ष दृश्यमान हो उठता है 'हमने खासे बड़े ड्राइंगरूम पर ताजी नजर मारी। बेकार की सजावट नहीं। न पुश्तैनी चीजों का बोझ, न नए का गैर-जरूरी जमावाड़ा। प्रवेशद्वार वाली दीवार के साथ-साथ उभरी स्पेस पर जुड़ी वुडन गोलाकारों की लम्बी कतार। पीछे से झाँक रहे थे- कैसेट-एल्बम, फाइलें, ब्रश, चाट्र्स-ट्यूबस और किताबें। सामान रखने की और उस तक आसानी से पहुँचने की अद्भुत व्यवस्था सभी कुछ हाथ की दूरी पर और बिना परिश्रम के कायदे-करीने से लगा।[35]

(2) *भाव बिंब :* जिन बिंबो द्वारा किसी विशेष भावस्थिति का चित्रण होता है, भावबिंब कहलाते हैं। इन बिंबो का प्रभाव विभिन्न इन्द्रियों पर न पड़कर मानस मन पर पड़ता है। विषाद की स्थिति में इन बिंब का प्रयोग किया जाता है। 'जयदेव' की मृत्यु होने के कारण सोबती जी को जब विरहजन्य वेदना की अनुभूति होती है तो उन अनुभूतियों को उन्होनें भाव बिंब के माध्यम से उभारा है 'यह क्या, प्लेटफार्म पर कोई नजर नहीं आ रहा। न कोई मुसाफिर और न तुम ही। इस गीले मौसम में समरहिल का प्लेटफार्म अजीब वीरान-सा लग रहा हैं। मालूम होता है, कहीं धरती और आकाश के बीच लटका हुआ है स्टेशन। बरखा की टपकन के अलावा सभी कुछ स्तब्ध सुनसान है।'[36]

(3) *प्राकृतिक बिंब :* कृष्णा सोबती ने प्राकृतिक दृश्यों को भी बिंबो के माध्यम से उभारा है। बरसात का बिंब कितना रोचक तथा स्वाभाविक बन पड़ा है 'उस शाम कनाट प्लेस के गोलाकार आसामान पर काले बादलों का ग्रे शामियाना तना था। कजरारी बदलियाँ एक-दूसरे से होड़ लगाए थीं। देखते-देखते उमड़ते-उमड़ते पनीले बादल गरजने लगे। बिजली कड़कने लगी। पैदल चलनेवाले पारपंथो और ट्रैफिक से गहमती सड़कों को फुर्तीली चाल से मापने लगे।'[37] इस प्रकार संध्या का प्रकृति चित्रण भी आकर्षित तथा मर्मस्पर्शी है 'तारकोल की सड़क पर ऊँचे घने पेड़ों की पुरानी पीढ़ी हवा में झोंके ले रही थी और काले कव्वे लगातार काँव-काँव शोर कर रहे थे। चिड़ियाँ नहीं चिड़े इधर से उधर फड़फड़ा रहे थे अपने पंखों को।

हमारी शाम की दिशा तय हो गई। जान गए कि चिड़ियाँ गैस पर खाना पका रही हैं और चिड़े, तोते, तीतर, बटेर, कौव्वे- काले और गोरे-दोनों कॉफी पी रहे हैं और खालिस इंटेलेक्चुअल अदा में एकालाप कर रहे हैं। संवाद कर रहे हैं। बतिया रहे हैं। बहस कर रहे हैं।'[38]

(4) *गंध बिंब :* इस बिंब का संबंध हमारी नासिका की घ्राण शक्ति से होता है। भारत की सड़कों तथा आसपास के वातावरण के वर्णन में यह बिंब उभर कर आया है 'न पान की पीकें, न गण्डेरियों के छिलकें, न खँखार, न पेशाब की बदबू, न खम्बो पर तेल की चिकनाहट। सच पूछिए तो हमें बार-बार यह शक हो कि क्या वाकई हम हिंदुस्तान में है। लगता तो यह है कि किसी दूसरे मुल्क में है।'[39]

प्रतीक

'प्रतीक' भावभिव्यक्ति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपकरण है रचनाकार सूक्ष्म मानसिक प्रक्रियाओं को अधिकाधिक स्पष्ट, व्यंजक तथा सम्प्रेषणीय बनाने के लिए प्रतीकों का आश्रय ग्रहण करता है। 'हम हशमत' में प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग किया गया है। प्रतीकात्मक शब्दों का संबंध लक्षणा तथा व्यंजना शक्ति से है। 'हम हशमत' संस्मरण के कुछ शीर्षक प्रतीकात्मक है उदाहरणार्थ 'अखाड़ा बंद खलीफा गायब, पहलवान को माफी यहाँ। 'पहलवान' शब्द प्रतीक है स्वंय कृष्णा सोबती लेखिका का इसी प्रकार 'रचनात्मक चमत्कारों के उस्ताद' प्रतीक है। बलवंत सिंह के प्रतिभाशाली लेखन का 'छह फुटिया हस्ती, यह रवीन्द्र कालिया के लिए प्रयुक्त किया गया प्रतीक है 'बाज आए मुहब्बत से उठा ले पानदान अपना' उर्दू शायरी का प्रयोग विभूति नारायण राय के लिए किया है। 'हम हशमत' की भाषा चूंकि व्यंग्यात्मक है कृष्णा सोबती ने निर्भय होकर साहित्यिक क्षेत्र की वास्तविकता को प्रकट किया है। अतः सीधे कटाक्ष करने परे उन्हें प्रतीकों का कम प्रयोग किया है।

इसी प्रकार कृष्णा सोबती द्वारा प्रयुक्त बिंबो तथा प्रतीकों की उपयोगिता 'हम हशमत' की भाषा को समृद्ध एवं जीवंत बनाती हैं। लेखिका की बिम्ब-योजना भाषा को अपनी ध्वनियों और संकेतों से अधिक पारदर्शी और संवेदनशील बनाती है। इस प्रकार बिंब और प्रतीक 'हम हशमत' की भाषा की प्रेषणीयता को बढ़ाकर कृति के सौंदर्य में वृद्धि करते हैं।

शैली

संस्मरण में भाषा यदि शरीर है तो शैली परिधान है। संस्मरणकार जिस ढंग से संस्मरण लिखता है, वही ढंग शैली है। शैली का संबंध अभिव्यक्ति की कला से होता है। 'हम हशमत' संस्मरण में कृष्णा सोबती ने निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग

किया है :

(1) फ्लैशबैक शैली : संस्मरण का आधार 'स्मृति' है। स्मृति के आधार पर ही संस्मरण लिखे जाते हैं। फ्लैश का अर्थ है प्रकाश तथा बैक का अर्थ है पीछे। फ्लैशबैक का अर्थ हुआ पिछले जीवन को प्रकाशित करना। 'हम हशमत' की रचना फ्लैश बैक शैली के माध्यम से की गई है। कृष्णा सोबती जब पुरानी यादों को लिपिबद्ध करती हैं तब इस शैली के माध्यम द्वारा ही यह संभव हो पाता है तथा स्मृति के कारण ही कथ्य आगे बढ़ता है जिससे संस्मरण गतिशील तथा विश्वसनीय बन जाता है 'ऐसी ही दिनों की एक दोपहर हमें याद हो आई है। दिल्ली के सनसनाते जाड़े में तेज पानी बरसने लगा था। ऐसे मौसम में कनॉट प्लेस के बरामदों में तेज़-तेज़ चलने का सुख और हर कदम जीने का अहसास दे जाता था।'[40] 'पिछले पाँच दशकों के साहित्यिक एलबम के पन्ने पलटें तो एक पीढ़ी-विशेष की समरूपी जोड़ी प्रखरता से हमारी आँखों के सामने कौंधती है।'[41] ''हशमत ने स्मृति बैंक का पल्ला उठाया, दरवाज़ा, खोला, लॉकर की चाबी घुमाई तो एक से एक नाम हमारे मानस-पटल पर तंरगित होने लगे।'[42] 'वह दुपहरी याद हो आई है जब हम बंबई में कमलेश्वर से मिले थे।'[43] यह सभी उदाहरण फ्लैशबैक शैली के हैं अतीत जीवन में जाकर ही संस्मरण का अपने संस्मरण की रचना करता है इस कारण संस्मरण की घटनाएँ सत्य पर आधारित होती हैं।

(2) व्यंग्यात्मक शैली : 'हम हशमत' में व्यंग्यात्मक शैली का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। व्यंग्यात्मक शैली से संस्मरण के केन्द्र में विवरण ना होकर व्यंजनात्मक है। इस शैली के द्वारा लेखिका ने अपनी बात को सीधे-सीधे व्यक्त ना करके व्यंग्य के द्वारा अभिव्यक्त किया है। आलोचकों की अकर्मठता तथा लेखकों के प्रति उपेक्षणीय व्यवहार को व्यंग्यात्मक शैली के माध्यम से उजागर किया है ''हे प्रिय आलोचक, ज़रा हमारी ताज़ातरीन रचना पर एक-आध नज़र तो डालिए। वक़्त बिल्कुल ही न हो तो सूँघकर ही देखिए कि रचना सस्ती भावुकता से ओतप्रोत है कि गरम मुहब्बत में लिपटी है या ठंडे चिंतन में सरोबार है। ऐसा तो नहीं कि इश्क और दर्द के सैलाब में किश्ती डगमगाए जा रही है, आलोचना के दावेदारों, आप हँस रहे हैं। आपके ऊँचे रूतबे के मुताबिक यह ख़िताब तो आपका है। आप सिर हिलाकर 'हाँ' करें या 'न'। कुछ भी न कहें, खामोश रहें तो भी, तूती आप की ही बोलेगी।''[44] साहित्यिक क्षेत्र के शंतरगी चालों से युक्त परिवेश को तथा लेखक समुदाय की बदलती परिस्थिति पर कटाक्ष करते हुए कृष्णा सोबती कहती हैं 'कभी ज़माना था जब लेखक निराशा, बिमारी और असफल प्रेम के मारे हुआ करते थे। आज इससे उलटा है। सेहतमंद खाल, मज़बूत चमड़ी, तगड़ा रोज़गार और झम्म-झम्म करते भवन में चम-चम रूह के साथ विराजमान हैं। ठप्पावाद। बापवाद, अनुमोदनवाद- तू मुझे और मैं तुझेवाद। इन्हीं के बल पर फूल रहा है गरिमावाद।'[45] रवीन्द्र कालिया ने अपने संस्मरण में कृष्णा सोबती पर गलत आरोप लगाए। लेखिका ने रवीन्द्र कालिया के गलत आरोपों तथा व्यक्तित्व को व्यंग्यात्मक प्रतीक शैली से अभिव्यक्त किया है 'जनाब अखाड़ेबाज एडिटर साहिब, आप जैसी छह फुटिया हस्ती को हशमत का आदाब। आज के बहरूपिए कमीने वक्तों में कौन किसको घात लगाकर इस्तेमाल कर ले, कौन किस शातिर के हाथों इस्तेमाल हो जाए, यह किसी को पता नहीं...। यह हम क्या जानें ? इसे तो जानें सम्पर्कवाद के धुरंधर पंडित ज्ञानी जो अपने कौशल से सँभाले हुए हैं बड़ी अदवी बिरादरी की जजमानी।'[46] व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग करने के कारण हम हशमत, की भाषा में चमत्कारिकता तथा नाटकीय प्रभाव की सृष्टि हुई है।

(3) आत्मकथात्मक शैली : 'हम हशमत' संस्मरण में कृष्णा सोबती ने अपने संबंध में लिखते समय आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया है। 'मुलाकात हशमत की सोबती से' शीर्षक इसी शैली का उदाहरण है, जिसके अंतर्गत उन्होंने अपने तथा अपनी रचनाओं के संबंध में अपने विचार व्यक्त किए हैं। आत्मकथात्मक शैली के माध्यम से उन्होंने ने अपने जीवन में घटने वाली घटनाओं एवं अपने ऊपर पड़ने वाले प्रभावों को अपनी स्मृति के आधार पर लिपिबद्ध किया है। ''पुरानी बात है। एक शाम भुवाली के डाकबँगले में चाय ले रही थी कि पास खड़े खानसामा की आँखो में मैने जाने क्या पढ़ लिया। वह लमहा था जिसने मुझे 'बादलों के घेरे' की मन्नों से एक कर दिया।

खानसामा के ख्याल में मैं एक मरीज थी और सेनेटोरियम में रहने आयी थी।'[47] इस प्रकार 'हम हशमत' में आत्मकथा के गुण जैसे आत्मविश्लेषण प्रभावोत्पादकता एवं स्वाभाविकता विद्यमान है।

(4) रेखाचित्र शैली : रेखाचित्र शैली में रेखाओं की सहायता से किसी व्यक्ति या वस्तु का ऐसा भावपूर्ण चित्र उपस्थित किया जाता है जिससे उस वस्तु या व्यक्ति का समस्त व्यक्तित्व ही सामने उपस्थित हो जाता है। 'हम हशमत' के प्रथम भाग में इस शैली का अधिक प्रयोग हुआ है। लेखिका ने चुने हुए शब्दों द्वारा पात्रों का साकार चित्र उपस्थित किया है जहाँ पात्रों की वाह्य विशेषताएँ मूर्तिमान हो उठती हैं 'रंग गोरा। चेहरा-मेहरा किसी भी पंजाबी लड़के का। अन्दाज सेल्स एग्जीक्यूटिव का। आँखें शरारती। गालें भरी हुई। कमीज दूधिया। उजली। ऐसे चमकारवाली कि उसे दिखाकर सफेदी का विज्ञापन किया जा सके।'[48] 'मँझोले कद के नागार्जुन स्वभाव से न सख्त हैं, न बेलचक। छरेरा बदन। निकली हुई गर्दन। गोल-गोल गुलट्टी आँखें। जरा छोटी। चेहरा-मोहरा कुछ इस तरह का कि जिसे देख पूरे इलाके का मुँह-माथा चमक उठे। चाल में फुर्ती, और सही पाँवों में सही जूते।[49]

(5) काव्यात्मक शैली : 'हम हशमत' में काव्यात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। कृष्णा सोबती जब कवियों की रचनाओं पर टिप्पणी करती है तो वहाँ उन लेखकों की काव्य-पक्तियों का उल्लेख करती है उदाहरणार्थ, 'बहुत दिनों के बाद/ अब की मैंने जी भर देखी/ पकी-सुनहली फसलों की मुस्कान/ बहुत दिनों के बाद।'[50]

संस्मरण में कहीं-कहीं उन्होंने ने अपनी बात को काव्य पंक्तियों के माध्यम से व्यक्त किया है। 'शराब पीने वाले को और शराब दे/ चाय पीने वाले को और चाय/ दूधवालों को और दूध/ काफी के शैदाइयों को काफी/ बीड़ीवालों को बड़े बण्डल/ सिगरेटवालों को सस्ते सिगरेट।'[51]

(6) साक्षात्कार शैली : 'हम हशमत' में कृष्णा सोबती ने साक्षात्कार शैली का अपनाकर युवराज सिंह, उमाशंकर जोशी, रत्तीकांत झा, मियां नसीरुद्दीन आदि से मिलकर उनके व्यक्तित्व आदि के विषय में कतिपय प्रश्नों के माध्यम से जानकारी प्राप्त की है। इनके साथ ही इन व्यक्तियों द्वारा अपने मन पर बड़े प्रभावों को भी अंकित किया हैं।

(7) पत्र-शैली : 'हम हशमत' में पत्र-शैली को अपनाया गया है। संस्मरण के क्षेत्र में इस शैली का प्रयोग नवीन है। इस शैली में पत्र की कल्पना करके उत्तर देने के प्रक्रिया का समावेश होता है। कृष्णा सोबती ने 'हम हशमत' भाग दो में पी.पी. पेशवा द्वारा लिखित पत्र को पाठकों के समक्ष रखा है और उस पत्र के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की।

निष्कर्ष

इस प्रकार 'हम हशमत' रचना द्वारा कृष्णा सोबती का भाषा संस्कार और लहजा हिंदी संस्मरण के स्तर को ऊँचा उठाता है। वे कथ्य-संवेदन के अनुसार बिंब-प्रतीक, लय आदि का प्रयोग करती हैं जिससे उनका कथ्य ऊर्जा युक्त बन पड़ा है। उन्होंने अपनी भाषा का है ना पुरुष का अपितु वह उनकी आधुनिक सोच से ओत-प्रोत है। इस प्रकार उन्होंने भाषा के भिन्न प्रयोग द्वारा संस्मरण साहित्य को नयी भंगिमा दी तथा भाषा को सरलता तथा ताजगी प्रदान की। अंत में यह कह सकते हैं कि कृष्णा सोबती के संस्मरण हिंदी संस्मरण साहित्य भंडार के अमूल्य रत्न है- उनकी देन इस क्षेत्रा में अमर रहेंगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1]रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव एवं भोलानाथ तिवारी- हिंदी भाषा : संरचना और प्रयोग, पृष्ठ संख्या 1
[2]वही, पृष्ठ संख्या 2
[3]हम हशमत-3, पृष्ठ संख्या 43
[4]जगदीशवर चतुर्वेदी- उत्तर आधनिकतावाद, पृष्ठ संख्या 298
[5]हम हशमत-2, पृष्ठ संख्या 176
[6]डॉ0 हरिमोहन शर्मा- रचना से संवाद, पृष्ठ संख्या 108, 109
[7]हम हशमत-1, पृष्ठ संख्या 223
[8]हम हशमत-2, पृष्ठ संख्या 249
[9]हम हशमत-2, पृष्ठ संख्या 315
[10]वही, पृष्ठ संख्या 58
[11]हम हशमत-1, पृष्ठ संख्या 125
[12]हम हशमत-2, पृष्ठ संख्या 170
[13]हम हशमत-3, पृष्ठ संख्या 141
[14]हम हशमत-2, पृष्ठ संख्या 107
[15]हम हशमत-1, पृष्ठ संख्या 172
[16]हम हशमत-2, पृष्ठ संख्या 22
[17]हम हशमत-1, पृष्ठ संख्या 61
[18]हम हशमत-2, पृष्ठ संख्या 319
[19]हम हशमत-3, पृष्ठ संख्या 35
[20]हम हशमत-2, पृष्ठ संख्या 121
[21]वही, पृष्ठ संख्या 169
[22]हम हशमत-3, पृष्ठ संख्या 28
[23]हम हशमत-2, पृष्ठ संख्या 123

[24]हम हशमत-3, पृष्ठ संख्या 154
[25]हम हशमत-3, पृष्ठ संख्या 186
[26]हम हशमत-1, पृष्ठ संख्या 132
[27]हम हशमत-3, पृष्ठ संख्या 166
[28]हम हशमत-1, पृष्ठ संख्या 177
[29]हम हशमत-3, पृष्ठ संख्या 118
[30]हम हशमत-3, पृष्ठ संख्या 99
[31]हम हशमत-1, पृष्ठ संख्या 54
[32]हम हशमत-2, पृष्ठ संख्या 32
[33]हम हशमत-1, पृष्ठ संख्या 7
[34]हम हशमत-1, पृष्ठ संख्या 16
[35]हम हशमत-3, पृष्ठ संख्या 8
[36]वही, पृष्ठ संख्या 24
[37]हम हशमत-2, पृष्ठ संख्या 284
[38]वही, पृष्ठ संख्या 143
[39]हम हशमत-1, पृष्ठ संख्या 130
[40]हम हमशत-2, पृष्ठ संख्या 149
[41]वही, पृष्ठ संख्या 170
[42]वही, पृष्ठ संख्या 316
[43]वही, पृष्ठ संख्या 328
[44]हम हशमत-2, पृष्ठ संख्या 53
[45]वही, पृष्ठ संख्या 71
[46]हम हशमत-3, पृष्ठ संख्या 150
[47]हम हशमत-1, पृष्ठ संख्या 268-269
[48]हम हशमत-1, पृष्ठ संख्या 116
[49]वही, पृष्ठ संख्या 218
[50]हम हशमत-1, पृष्ठ संख्या 220
[51]हम हशमत, पृष्ठ संख्या 214

सहायक ग्रंथ-सूची

कृष्णा सोबती -हम हशमत, भाग -1
कृष्णा सोबती -हम हशमत, भाग -2
कृष्णा सोबती -हम हशमत, भाग -3
रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव एवं भोलानाथ तिवारी -हिंदी भाषा : संरचना और प्रयोग
डॉ. हरिमोहन शर्मा -रचना से संवाद
जगदीश्वर चतुर्वेदी -उत्तर आधुनिकतावाद
कृष्णा सोबती एवं कृष्ण बलदेव वैद -सोबती वैद संवाद

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,98-103**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 23 फरवरी 2014

महायान बौद्धधर्म में 'पारमिता' की अवधारणा

डॉ. अर्चना शर्मा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *महायान बौद्धधर्म में 'पारमिता' की अवधारणा* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अर्चना शर्मा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

बौद्धधर्म में पारमिताओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हीनयान एवं महायान दोनों सम्प्रदायों में कुछ परिवर्तनों के साथ 'परमिता-सिद्धान्त' का उल्लेख प्राप्त होता है। हीनयान परम्परा में बुद्धत्व की प्राप्ति हेतु पारमिताओं की पूर्णता अनिवार्य है, जबकि महायान बौद्धधर्म में बोधिसत्वचर्या की नींव ही पारमिताएँ हैं। बौद्ध महायानी 'साधना' को 'पारमिता चर्या' कहते हैं। महायान ग्रंन्थों के अनुसार जो बुद्धत्त्व की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील है, अर्थात् जो बोधिसत्त्व है उसे षट्पारमिता ग्रहण करनी चाहिए। दान-शीलादि गुणों में जिसने सम्पूर्णता प्राप्त की है, उसके लिए कहा जाता है कि उसने दानशीलादि पारमिता हस्तगत कर ली है। यही बोधिसत्त्व शिक्षा है और इसी को बोधिचर्या कहते हैं।[1] बोधिचर्या ही बुद्धत्त्व की प्राप्ति की साधना है, वही पारमिता की भी साधना है।

'पारमिता' शब्द का विवेचन विद्वानों ने अनेक आकार से किया है। उदाहरणार्थ- 'भवातीत गुण', 'परिशुद्धगुण', 'परमोत्तम पूर्णता'। पालि साहित्य में 'सुत्तनिपात', 'जातक' तथा 'नेतिप्रकरण' में 'पारमी' शब्द प्राप्त होता है।[2] रीज डेविड्स ने पारमिता का अनुवाद सम्पूर्णता, पूर्णता, उच्चतम अवस्था किया है।[3] डॉ0 हर दयाल ने पारमिता का अर्थ परिपूर्णता बताया है। उन्होंने गोल्डस्टूकर का दृष्टिकोण उद्धृत किया है जिसके अनुसार पारमिता शब्द संस्कृत के 'परम' शब्द से उत्पन्न हुआ है तथा परम का अर्थ अति दूर, अंतिम, उच्चतम, प्रथम, अतिउत्तम, प्रमुख, सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ, प्रधान आदि किया है। उन्होंने 'पारमी' को 'परम' (बुद्ध) की पुत्री बताया है।[4] किन्तु यह सन्तोषजनक व्याख्या नहीं है। अन्य विद्वानों ने इसे दो शब्दों के संयोग से व्युत्पन्न माना है- पारं (द्वितीय तट) + इतागता (गया हुआ) अर्थात् दूसरे तट पर जाने की क्षमता। धम्मपद में 'पारगवेसिनः', 'पारगामिनो' तथा 'पारगू' शब्दों का प्रयोग 'पारजाने' के ही अर्थ में किया गया है।[5] ओटो बोथलिंक ने पारमिता को 'अमूर्त गुणवाचक सत्व संज्ञा कहा है। तिब्बती शब्दकोश में इसका 'फल-रोल-तु-फ्यइन-प' अर्थात् दूसरे किनारे को प्राप्त करना यह अर्थ किया गया है,[9] जिसका आयोजन होगा 'इस जन्म का दूसरा किनारा' अर्थात् निर्वाण प्राप्त करना। बौद्ध दर्शन में इस जीवन का अतिक्रमण कर निर्वाण पाना परमलोकोत्तर गुण है। ऐसा लगता है कि तिब्बती अनुवादकों को इसकी वैज्ञानिक

* असि. प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, का. हि. वि. वि. वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

व्युत्पत्ति ज्ञात नहीं थी।[6] पालि ग्रन्थों में उपलब्ध 'पारमी' शब्द से भी यह स्पष्ट है कि 'परम' शब्द से व्युत्पन्न है। 'ता' प्रत्यय का संयोग 'ता' अन्त में होने वाले भाववाचक प्रत्यय के सादृश्य पर बाद में हुआ है। दानपारमिता जैसे समस्त पद से दान पारमी के गुण धर्म की अभिव्यक्ति होती है। अतः 'ता' प्रत्यय बहुब्रीहि समास के रूप में अन्वित होगा- ''दानस्य पारमिः यस्य'' किन्तु दान-पारमिता में दोनों पद एक-दूसरे के प्रत्यक्ष विरोधी लक्षित होते हैं। अतः इसका निर्वचन इस रूप में करना युक्तिसंगत होगा- ''दानं एव पारमिता दानपारमिताः'' अर्थात् दान की गुणवतत्ता ही स्वयं पारमिता पूर्णता है।[7] इस आकार महायान परम्परा में 'पारमिता' शब्द का विस्तार से अर्थविवेचन किया गया है, जिसमें इसका अर्थ अधिकांशतः 'पूर्णता', 'परिपूर्णता' तथा 'उच्चतम अवस्था' किया गया है। महायान ग्रन्थों में पारमिता शब्द की कुछ और व्याख्याएँ की गयी हैं। "बोधिसत्त्वभूमि' में पारमिता शब्द की अत्यन्त समीचीन व्याख्या प्रस्तुत की गई है। उक्त व्याख्या से ऐसा लगता है कि 'बोधिसत्त्वभूमि' के लेखक धर्मकीर्ति का अभिप्राय 'पारमिता' पद की निष्पत्ति 'परम' धातु से करने की है। धर्मकीर्ति का विचार है कि दीर्घकालिक अभ्यास से प्राप्त होने के कारण, स्वभाव से परम विशुद्ध होने के कारण सभी लौकिक, श्रावक बोधि तथा आत्येक बुद्ध बोधि से उत्तम फल प्राप्त कराने के कारण ही इसे 'पारमिता' कहते हैं।[8]

इस प्रसंग में ध्यातव्य है कि हीनयान के समान महायान में भी पारमिता का अर्थ विवेचन 'पार जाने' के अर्थ में किया गया है। संसार माया है। इस असत्य संसार की तुलना शान्तिदेव ने भी नदी से की है तथा मानव जीवन को नाव मानकर पार जाने की बात कही है।[9] सामान्य लोगों से इस प्रकार का ज्ञान अथवा इस प्रकार की चर्या सम्भव नहीं है। अतः सर्वोच्च प्रक्रिया भी मानी जा सकती है। सर्वोच्चता तथा पारमिता में कोई अन्तर नहीं है। हरिभद्र ने भी अपने 'अभिसमयालंकारलोक' की व्याख्या में 'पारमिता' शब्द की निष्पत्ति 'पारं' तथा 'एति' से किया है और पारं का अर्थ 'प्रकर्ष पर्यन्त' ही माना है।[10] इस आकार भवसागर को पार करने हेतु तथा जीवन में चरमोत्कर्ष प्राप्त करने हेतु की गई साधना ही पारमिता है।

महायान परम्परा में पारमिताओं की संख्या के सन्दर्भ में भिन्न-भिन्न उल्लेख प्राप्त होते हैं। यद्यपि पालि परंपरा में भी पारमिताओं की संख्या के सन्दर्भ में दो उल्लेख प्राप्त होते हैं। सर्वप्रथम 'बुद्धवंश' में दश पारमिताओं का उल्लेख है।[11] तत्पश्चात् चरियापिटक में केवल 'सात' पारमिताओं से सम्बन्धित चर्याएँ ही प्राप्त होती हैं।[12] महायान परम्परा में प्रथमतः षट् पारमिताओं की ही प्रधानता थी किन्तु कुछ ग्रन्थों में यह संख्या दश कर दी गयी। यद्यपि षट् पारमिताओं का ही विशेष वर्णन मिलता है।[13] शेष चार पारमिताओं की बहुविस्तीर्ण व्याख्या उपलब्ध नहीं होती। संभवतः महायानियों ने हीनयानियों की प्रतिस्पर्धा में दस पारमिताओं की महत्ता का निरूपण किया। दशभूमिक सूत्र के एक परिवर्त में षट्पारमिताएँ तथा दूसरे परिवर्त्त में अन्य चार पारमिताएँ व्याख्यात हैं। दशभूमिक सूत्र में उल्लिखित है कि बोधिसत्त्व दस गुणों को धारण करते हैं और दस अकुशल मूलों से सर्वथा विरत रहते हैं। महाव्युत्पत्ति में चार चर्याओं का विकास दस चर्याओं में किया गया है (परि0 33)। दशभूमिक सूत्र में दस प्रणिधान, दस निष्ठापद तथा नैपुण्य आदि का वर्णन मिलता है। इससे स्पष्ट है कि दस पारमिताओं का विकास तब हुआ जब सप्तभूमियों के अतिरिक्त दस भूमियों की परिकल्पना की गई।

पूर्ववर्ती छः पारमिताएँ निम्नवत् हैं- 1. दान पारमिता, 2. शील पारमिता, 3. क्षान्ति पारमिता, 4. वीर्य पारमिता, 5. ध्यान पारमिता, 6. प्रज्ञा पारमिता।

पश्चवर्ती चार पारमिताएँ हैं- 1. उपायकौशल पारमिता, 2. प्रणिधान पारमिता, 3. बल पारमिता, 4. ज्ञान पारमिता।

बोधिसत्त्व के विकास की दशभूमियाँ वाङ्मय में वर्णित हैं। वे दश पारमिताओं की समता में उपस्थित की गई हैं; क्योंकि दश पारमिताएँ तथा दश भूमियाँ दोनों ही बोधिसत्त्वचर्या के अंग हैं। चन्द्रकीर्ति ने भूमियों का पारमिताओं के साथ इस प्रकार सम्बन्ध प्रतिपादित किया है।[14]

क्रम संख्या	भूमि	पारमिता
1.	प्रमुदिता	दान पारमिता
2.	विमला	शील पारमिता
3.	प्रभाकरी	क्षान्ति पारमिता
4.	अर्चिष्मती	वीर्य पारमिता
5.	सुदुर्जया	ध्यान पारमिता

6.	अभिमुख	आज्ञा पारमिता
7.	दुदंगमा	उपायकौशल पारमिता
8.	अचला	प्रणिधान पारमिता
9.	साधुमती	बल पारमिता
10.	धर्ममेधा	ज्ञान पारमिता

महायान परम्परा में पारमिताओं की इस संख्या वृद्धि का कारण स्पष्ट करते हुए हरदयाल महोदय[15] का कथन है कि महायान में पारमिताओं की छः से दश में संख्या वृद्धि हीनयानियों के आभाव से संभव है। परन्तु इसकी सम्भावना अधिक है कि ईस्वी सन् की प्रारंभिक शताब्दी में दशमलव के आविष्कार के आभाव में वैचारिक जगत में भी इस तरह के परिवर्तन हुए। इस दस संख्या का सभी भारतीय साधना पद्धतियों पर आभाव दिखाई देता है। पातंजल योग के यम-नियमों की संख्या भी दस रखी गई है। 'समाधिराजसूत्र' में प्रत्येक पारमिता के दस लाभ बताये गये हैं।[16]

विस्तृत विवरण की अनुपलब्धता के आधार पर परवर्ती चार पारमिताएँ अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं लगतीं। संभवतः छः पारमिताओं की अवधारणा ही मुख्यतः प्रचलित हैं। छः पारमिताओं का विकास त्रिस्कन्धात्मिक अष्टांगिक मार्ग से हुआ है। त्रिस्कन्धों में शील, समाधि तथा प्रज्ञा समाहित हैं। त्रिशिक्षा भी बौद्ध वाङ्मय में वर्णित है। प्रज्ञा का स्पष्ट उल्लेख दोनों में हुआ है तथा शील और समाधि का उल्लेख एक साथ हुआ है। शील को समाधि का पुरस्कर्ता कहा गया है किन्तु इस संदर्भ में प्रज्ञा का उल्लेख नहीं मिलता। अष्टांगिक मार्ग का पर्यवसान समाधि में होता है। त्रिशिक्षा का वर्णन अधिशील, अधिचित्त तथा अधिप्रज्ञा के रूप में किया गया है।[17] आर्य असंग ने महायानसूत्रालंकार में छः पारमिताओं का अधिशील, अधिचित्त, अधिप्रज्ञा तथा सर्व सहायक नामक चार वर्गों में विभाजन किया है। यहाँ अधिक उपसर्ग प्राधान्य तथा महत्त्व का ज्ञापक है तथा चित्त समाधि का बोधक है। अधिचित तथा अधिप्रज्ञा नामक शिक्षा पाँचवीं तथा छठवीं पारमिता से सम्बद्ध है। ये दोनों प्रज्ञा पारमिता के विकास के पूर्व एक साथ उल्लिखित दृष्टिगोचर होते हैं। चतुर्थ पारमिता वीर्य तथा शीलस्कन्ध के मध्य सन्निवेशित है, जो वस्तुतः उपासकों के लिए निर्दिष्ट है और ध्यान पारमिता प्रज्ञास्कन्ध में निवेशित है, यह भिक्षुओं के लिए निर्दिष्ट है। पारमिताओं में दान पारमिता का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि शील के साथ सम्बद्ध होने के कारण इसका विकास प्रारम्भ काल में ही हो गया था। उपासकों के लिए दान तथा शील का अप्रतिम महत्त्व था क्योंकि इसमें सुखमय प्रासादिक पुनर्जन्म की भावना जुड़ी थी। बुद्ध ने सर्वप्रथम 'दानकथं शीलकथं तथा समाकथं' का उपदेश दिया था और कालान्तर में आनागारिक जीवन की महत्ता को उद्घोषित किया था।[18] अतः यह स्पष्ट है कि न्यायतः शील में अन्तर्युक्त होते हुए भी दान की शिक्षा सामान्य मनुष्यों के लिए सर्वप्रथम थी। किन्तु महायान के प्रसिद्ध शास्त्रकार शान्तिदेव ने अपने दो ग्रन्थों 'बोधिचर्या-वतार' तथा 'शिक्षासमुच्चय' में पारमिताओं का विवरण देते हुए शिक्षासमुच्चय में तो दान एवं शील पारमिता का विवरण दिया है परन्तु बोधिचर्यावतार में केवल चार पारमिताओं-क्षान्तिपारमिता, वीर्यपारमिता, ध्यानपारमिता, प्रज्ञापारमिता पर ही पृथक परिच्छेदों की रचना की गयी है। दान एवं शील पारमिता पर पृथक परिच्छेद नहीं है। इस संदर्भ में शान्तिदेव की यह स्पष्ट मान्यता लगती है कि सभी उपद्रवों तथा अनर्थों की जन्मभूमि 'चित्तनगर' ही है। वे हरिभद्र के 'अभिसमयालंकारालोक' से सहमत हैं कि बोधिचित्त ही शून्यता एवं करुणा का गर्भ है। एक ही साथ इस चित्त के उदय होने के दो प्रभाव हैं। एक ओर तो परमार्थसत्य के धरातल पर इससे शून्यता का पुण्य प्रादुर्भूत होता है तो दूसरी ओर साथ ही साथ दृश्य जगत पर सक्रिय करुणा की सुगन्धि परिव्याप्त होती है। अतएव मन का नियन्त्रण ही सभी साधनाओं, आचारों तथा बुद्धत्त्व का मूल है और संभवतः इसीलिए शान्तिदेव ने बौद्धजगत को 'पापदेशना' रूपी नयी साधना पद्धति प्रदान करने के अनन्तर पूर्व में किये गये कर्मों के फलों के प्रभाव से मुक्ति हेतु तथा लोकहिताय बुद्धों एवं बोधिसत्त्वों की 'याचना' करने के अनुष्ठान के पश्चात् पूजा, शरण-गमनादि द्वारा अखण्ड पुण्य प्राप्त करने की प्रक्रिया अपनाई है जिससे वर्तमान के शुभ से पूर्वकृत अशुभों का क्षय हो और भविष्य में पुनः अशुभ न करने के व्रत से उनका पुनरुद्भव निरुद्ध हो।

परमार्थजगत् के धरातल पर यही बोधिसत्त्व 'परात्मसमता' प्राप्त करता है जहाँ इसके पुण्यों का अन्य जीवों के पापों के बदले में विनिमय किये जाने की क्षमता का उद्भव होता है। इस प्रकार दृश्य जगत में दूसरों के पापों के क्षय हेतु अपने पुण्य का दान कर बोधिसत्त्व यह अनुभव करता है कि परोक्ष जगत में निर्वाण तथा संसार समान है और प्रत्यक्ष जगत मिथ्या

है अतः कर्म और उसके फल भी मिथ्या हैं।[19] एकमात्र चित्त के ही सांसारिक बन्धन में रहने से सभी प्राणी बद्ध हैं और एकमात्र उसी के दमन से सभी मुक्त हो सकते हैं।[20] बोधिसत्त्व एक मानसिक अवस्था है। बोधिसत्त्व बोधिचित्त का ही मूर्तरूप है। बुद्धत्त्व प्राप्ति के पूर्व एकमात्र वैयक्तिकता उसी में है। अतएव चित्त का अभिप्राय समझ लेने की अवस्था में सभी कुछ मात्र घटनाव्रत आतीत होने लगता है, यहाँ तक कि बोधिसत्त्वत्व भी।

बोधिचर्यावतार का उद्देश्य बोधिसत्त्व के मनस का अनुशीलन तथा अनुकरण है। बोधिसत्त्व के मनस को समझना कर्मकृत बन्धनों का उच्छेद करना है और अन्त में उससे विमुक्त होना ही बोधिसत्त्व का मनस बन जाता है, तब यह अनुभव करना है कि न मनस है और न बोधिसत्त्व, सभी कुछ शून्य है। यह दान तथा शील से बढ़कर है या यों कहें कि इस प्रकार की विचार शक्ति ही, जिसका अधिष्ठान सार्वभौमिकता है, साधना का मूल है। इसी में शील तथा दान दोनों पारमिताओं की साधना का समावेश है। अतः बोधिचर्यावतार में इनका निरूपण अलग से नहीं किया गया है।

महायान लेखकों ने पारमिता को अप्रतिम और महत्त्वपूर्ण माना है। पारमिताएँ बोधिसत्त्व की परममित्र हैं। सभी की माता-पिता हैं। इनके अनुशीलन से परमकल्याण, आसन्न, पुनर्जन्म तथा सरल एकाग्रता तथा परमोत्तम प्रज्ञा की प्राप्ति होती है।[21] पारमिताएँ पूर्णतः अवदात्त और परम पवित्र हैं। जब लौकिक एवं पारलौकिक सुख की प्राप्ति के लिए पारमिताएँ सामान्य पुरुषों के द्वारा अनुशीलित होती हैं, तब ये साधारण होती हैं, हीनयानियों के द्वारा वैयक्तिक निर्वाण के लिए जब इनका अनुशीलन किया जाता है तब ये असाधारण कही जाती हैं और जब महायानियों द्वारा समस्त प्राणियों के निर्वाण के लिए अनुशीलित होती हैं तो ये परमोच्च एवं सर्वोत्तम कही जाती हैं। सभी पारमिताओं का अनुशीलन अविहित विचार, आत्मदक्षता तथा प्रज्ञा के द्वारा किया जाता है। पारमिताओं के महत्त्वानुसार परिपूर्णता के सन्दर्भ में 'बोधिचर्यावतार' में उल्लिखित है कि दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान और प्रज्ञा नामक छः पारमिताएँ उत्तरोत्तर श्रेष्ठता को प्राप्त करती जाती हैं। किन्तु अवर पारमिता के लिए श्रेष्ठ पारमिता का त्याग नहीं करना चाहिए (अर्थात् रूपीय विरोध में अभ्यास नहीं करना चाहिए।) पुण्य रूपी जलप्रवाह की रक्षा के लिए बोधिसत्त्वों की शिक्षा का अनुपालन एक सेतु के समान है, अतः उसके अनुरूप ही सभी पारमिताओं का अभ्यास करना चाहिए जिससे सेतु छिन्न न हो जाए, ''उत्तरोतरतः श्रेष्ठा दानपारमितादयः। नेतरार्थ व्यजेच्छ्रेष्ठामन्यत्राचार-सेतुततः।।''(बो0च0 5/03)

महायानी शास्त्रकारों द्वारा वर्णित षट् पारमिताओं का संक्षिप्त विवरण पारमिता-सिद्धान्त के स्पष्टीकरण हेतु आवश्यक है। प्रथम पारमिता दान पारमिता है जिसका अर्थ है सभी वस्तुओं का सभी जीवों के लिए दान और दानफल का भी त्याग। महायान में दान की नयी विचारधारा का विकास हुआ जिसमें करुणा एवं पुण्यदान पर विशेष बल दिया गया। द्वितीय पारमिता शील का अर्थ है प्राणनिपात आदि सब गर्हित कार्यों से चित्त की विरति। विरति चित्तता ही शील है। शीलपारमिता का निहितार्थ है- सामान्य शुभ गुणों का आविर्भाव, मन, वाणी तथा कर्म की पवित्रता तथा निग्रह, पंचशील तथा दश कुशल कर्मों का अभ्यास जो बौद्ध धर्म के साधक की प्रारम्भिक नैतिक शिक्षाएँ हैं। तृतीय पारमिता क्षान्ति का अर्थ है 'तितिक्षा'। क्षान्ति को क्रोध, द्वेष एवं प्रतिघ का प्रतिपक्षी माना जाता है। इसमें द्वेष का प्रमुख स्थान है। शान्तिदेव के अनुसार द्वेष के समान कोई पाप नहीं है और क्षान्ति अथवा तितिक्षा के समान कोई तपस्या नहीं है। चतुर्थ पारमिता वीर्य का अर्थ है कुशल कर्म में उत्साह का होना। बोधिसत्त्व उत्साह सम्पन्न होने के लिए जिस चर्या की साधना में लगता है उसे ही वीर्य पारमिता कहते हैं। पंचम पारमिता ध्यान पारमिता है। महायान सूत्रालंकार में उल्लिखित है कि अध्यात्म में मन को धारण करना ही ध्यान है। अतः ध्यान का अभिप्राय है 'चित्त की शान्तावस्था की अनुभूति की साधना जिसमें मनोविग्रह एक आवश्यक प्रक्रिया है। षष्ठ पारमिता प्रज्ञा पारमिता है। ध्यान पारमिता से चित्त की एकाग्रता होती है और चित्त की एकाग्रता से प्रज्ञा के प्रादुर्भाव में सहायता मिलती है। प्रज्ञापारमिता यथार्थज्ञान को कहते हैं। इसका दूसरा नाम भूत-तथता है। प्रज्ञा के बिना पुनर्भव का अन्त नहीं होता। प्रज्ञा की प्राप्ति के लिए ही अन्य पारमिताओं की शिक्षा कही गई है। प्रज्ञा के अनुकूलवर्ती होने पर ही दान आदि पाँच पारमिताएँ सम्यक्सम्बोधि की प्राप्ति करने में समर्थ एवं हेतु होती हैं। षट्पारमिता में प्रज्ञापारमिता की प्रधानता पाई जाती है।

हीनयान और महायान परम्परा में पारमिता की अवधारणा में परस्पर वैचारिक भिन्नता परिलक्षित होती है। हीनयान परम्परा ने बुद्ध की युक्तियाँ लौकिक बुद्ध की जीवनचर्या को ध्यान में रखकर तथा धुतंग तापसों के समाज बाह्य मार्ग से भिन्न एक

लोक कल्याणकारी मार्ग का प्रतिपादन किया। गृहस्थों में इस सिद्धान्त को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रथम एवं द्वितीय स्थान दान तथा शील पारमिता को मिला। तृतीय पारमिता नैष्क्रम्य से व्यक्ति के गृहस्थ मार्ग छोड़ने की प्रक्रिया आरम्भ हुई। इनके भिक्षु जीवन में भी पूर्ण सफलता के लिए अनेक बातें अनिवार्य रही हैं, जिनकी संकेतक हैं आगे की पारमिताएँ। महायान परम्परा में गृहस्थ को अत्यन्त ऊँचा स्थान दिया गया और बोधिचर्या के लिए भिक्षु बनना अनिवार्य नहीं माना गया। इसीलिए महायान की पारमिता सूची में नैष्क्रम्य की आवश्यकता नहीं समझी गई। महायान सूची का ध्यान और हीनयान सूची का अधिष्ठान मन की एकाग्रता की ओर उन्मुख करने वाले अवश्य है, किन्तु समाधि की कठोरता से साधक को दूर रख रहे हैं। चूंकि महायान में प्रज्ञा का स्थान सर्वोच्च है अतः पारमिता की सूची में अन्तिम पारमिता प्रज्ञा पारमिता है। हीनयान की तुलना में महायान की प्रज्ञा की अवधारणा अत्यन्त ऊँचाई पर है। इसलिए हीनयान की सूची में प्रज्ञापारमिता के पश्चात् अन्य पारमिताओं की गणना संभव है, किन्तु महायान में नहीं। यही कारण है कि महायान ग्रन्थों में हीनयानियों की पारमिता सूची से प्रभावित होकर दश भूमियों की कल्पना तो उपलब्ध होती है, किन्तु प्रज्ञा को अन्तिम मान लिये जाने के कारण पारमिताओं में प्रायः किसी भी प्रकार की संख्या वृद्धि नहीं की गई।

इस आकार महायान बौद्ध धर्म में पारमिता की अवधारणा की अत्यन्त गंभीर एवं दार्शनिक व्याख्या की गई है। षट्-पारमिताओं की पूर्णता बोधिसत्त्व की साधना को सफल करती है, जो महायान का परम लक्ष्य है।

संदर्भ

[1] आचार्य नरेन्द्रदेव -बौद्धधर्मदर्शन, पटना, 1956, पुनर्मुद्रित, दिल्ली, 1994, पृ0 सं0 184

[2] *सुत्तनिपात,* मूल एवं हिन्दी अनुवाद, भिक्षु धर्म रक्षित, वाराणसी, 1977, पृ0 सं0 195; जातक, संपादक फॉसवाल, लंदन, 1877-189, छः खण्डों में, खण्ड-1, पृ0 सं0 45-7; नेतिप्रकरण-87

[3] रीज डेविड्स -टी0डब्ल्यू0 एण्ड स्टीड विलियम, (सम्पादक) पालि इंग्लिश डिक्शनरी, पुनर्मुद्रित, दिल्ली, 1975, पृ0 सं0 77

[4] दयाल, हर -दी बोधिसत्त्व डॉक्ट्रिन इन बुद्धिस्ट संस्कृत लिटरेचर, दिल्ली, 1978 (पुनर्मुद्रित), पृ0 सं0 165-66

[5] *धम्मपद,* संपादक एस0एस0 थेर, पालि टेक्स्ट सोसाइटी, लंदन, 1906-15, 24/22, 6/10-11 तथा 24/15

[6] दयाल, हर, पूर्व उल्लिखित ग्रंथ, पृ0 सं0 66

[7] वही, पृ0 सं0 166-167

[8] दीर्घकाल समुदागमात्स्वभाविशुद्धिविशेषातदन्येभ्यः/ सर्वलौकिक श्रावक आत्येक बुद्ध कुशलमूलेभ्यः दशदानादयो-/ धर्माः परमेमकालेन समुद्धगताः परमया-स्वभावविशुध्याविशुद्धाः/ परमंचफलमनुप्रयच्छन्ति। इति तस्मात्पारमिता इत्युच्यन्ते। -बोधिसत्वभूमि, धर्मकीर्ति, पटना, 1966, पृ0 सं0 256-257

[9] मानुष्य नावमासाद्य तर दुःख महानदीम्। मूढ़ कालो न निद्राया इयं नौ दुर्लभा पुनः।। वही, 7/14

[10] पारं प्रकर्षपर्यन्तं एति इति विगृह्य, क्वापि सर्वापहारि/ लोपे अनित्यमागमशासन मित्यलुकितत्पुरुषे, कृति/ बटुलमिति, अनुकि च कर्मविभक्तेः कृते पारमिस्तद्। भाव पारमिता। त्रिशतिका प्रज्ञापारमिताकारिका, पृ0 सं0 18

[11] *बुद्धवंस,* नालन्दा देवनागरी पालि सीरीज, संपा0 भिक्षु जगदीश काश्यप, 1959, पृ0 सं0 304

[12] चरियापिटक, संपादक- आर0 मॉरिस, पालिटेक्स्ट सोसायटी, लंदन, 1882; भरतसिंह उपाध्याय पालि साहित्य का इतिहास, इलाहाबाद, 2000 (षष्ठ संस्करण), पृ0 सं0 376

[13] ललितविस्तर, संपा0 एस0 लेफ्मान, अंग्रेजी अनुवाद- आर0एल0 मित्रा, बिब्लियोथिका इण्डिका, 1877, पृ0 सं0 340; महावस्तु, संपा0 ई0 सेनार्ट, तीन खण्डों में, 1887-97, 3.226

[14] पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र -बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ, 1990 (तृतीय संस्करण), पृ0 सं0 363

[15] दयाल, हर, वही, पृ0 सं0 167

[16] समाधिराज सूत्र, संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट नं0 4, हूडसन कलेक्शन, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन, परि0 19

[17] *महायान-शान्ति भिक्षु,* (उद्धृत) निदानकथा (हिन्दी अनु0), संपा0 महेश तिवारी, वाराणसी, 1970, पृ0 सं0 30

क्र0सं0	वर्गीकरण	छः पारमिताएँ	दस पारमिताएँ
1.	अधिशील	1. दान	1. दान

		2. शील	2. शील
		3. क्षान्ति	3. नैष्क्रम्य
			4. सत्य
			5. क्षान्ति
2.	अधिचित्त	4. ध्यान	6. मैत्री
			7. उपेक्षा
3.	अधिप्रज्ञा	5. प्रज्ञा	8. प्रज्ञा
4.	सर्वसहायक	6. वीर्य	9. वीर्य
			10. अधिष्ठान

[18] *दीघनिकाय,* संपादक टी0डब्ल्यू, रीज डेविड्स और जे0इ0 कारपेंटर (तीन जिल्दों में), पालि टेक्स्ट सोसाइटी, लंदन, 1890-1911; (हिन्दी अनुवाद) राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि सभा, सारनाथ, 1936, 148.7, 149.7

[19] तेनात्मभिनिवेशो यावत्तावतु ससारः। आत्मनिसतिपरसंज्ञा स्वपरविभागात्परिग्रहद्वेषो।। नागार्जुन (उद्धृत बोधिचर्यावतार टीका)

[20] सर्वे बद्धा भवन्त्येते चितस्यैकस्य बन्धनात्। चितस्यैकस्य दमनात् सर्वे दान्ता भवन्ति च।

[21] अष्ट साहस्रिक प्रज्ञापारमिता, संपादक आर0 मिश्रा, कलकत्ता, 1888, बिब्लियोथिका इंडिका, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1960, 396.15

लेखकों के लिए निर्देश

शोधपत्र का अनुरोध

लेखक अपना शोधपत्र डॉ. मनीषा शुक्ला ,प्रधान सम्पादिका आन्वीक्षिकी भारतीय शोध पत्रिका को ई-मेल पर प्रेषित करें। (maneeshashukla76@rediffmail.com)

प्राप्त शोधपत्र पत्रिका में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोधपत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोधपत्र का कोई भी भाग प्रधान सम्पादिका के अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है। कृपया अपने शोधपत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें,शीर्षक ;सारांश ;पाण्डुलिपि ;पुस्तक संदर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु अपना नाम पता पाण्डुलिपि पर न दें।

शीर्षक :शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें,किन्तु अपना पूरा नाम,पता,संस्था जहाँ पर अध्ययन अथवा अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका विषय,दूरभाष अथवा मोबाइल,फैक्स,ई-मेल पत्राचार हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें। उपर्युक्त तथ्य आपके शोधपत्र के शब्द सीमा के अन्तर्गत ही माना जायेगा।

सारांश :कृपया शोधपत्र का सारांश 120 शब्दों में दें।

पाण्डुलिपि :इसके अन्तर्गत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी ; जो 5 से 10 पृष्ठ तक होनी चाहिये। शोधपत्र 10 पृष्ठ से (सारांश,शब्द संक्षेप,संदर्भ सूची समेत)अधिक प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। अन्यथा वृहद् शोधपत्र(10 पृष्ठ से अधिक) प्रकाशन में देर भी हो सकती है। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि शोधपत्र पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। शोधपत्र प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने इसका पूरा ध्यान रखा जाता है फिर भी कोई त्रुटि पाये जाने पर लेखक संशोधित रीप्रिंट प्राप्त कर सकता है ; पत्रिका में संशोधन की व्यवस्था नहीं है।

सन्दर्भ वर्णमालाक्रामानुसार :शोधपत्र के समापन पर कृपया संदर्भ वर्णमाला क्रमानुसार दें। पत्रिका का वर्ष,लेखक, पृष्ठ संख्या,भाग इत्यादि विस्तार से दें। पुस्तक शीर्षक या पत्रिका शीर्षक इटालिक दें।

पुस्तक :प्रकाशक का नाम,संस्करण संख्या,प्रकाशन वर्ष,लेखक का नाम,पुस्तक का नाम,पृष्ठ संख्या

पत्रिका :पत्रिका का नाम,लेख का शीर्षक,लेखक का नाम,प्रकाशक का नाम,अंक संख्या/माह,वार्षिक अथवा अर्द्धवार्षिक अथवा मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

समाचार पत्र :प्रकाशक,तिथि,सन् ,पृष्ठ संख्या,

इण्टरनेट :वेबसाइड,पृष्ठ संख्या,मुख्य शीर्षक,अन्त: शीर्षक।

मानचित्र एवं सारणी :मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोधपत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में दें(उदाहरण सारणी संख्या 1)

विशेष :कृपया अपना शोधपत्र ई-मेल करने के बाद डॉक से अवश्य भेजें। अपने शोधपत्र के साथ-साथ अपना वायोडाटा, फोटो,स्वपता लिखा लिफाफा(25 रू के टिकट सहित)भेजें। शोधपत्र यदि हिन्दी भाषा में है तो ए.पी.एस प्रियंका रोमन(ए.पी.एस. कार्पोरेट 2000++)में तैयार सी.डी के साथ दें। शोधपत्र प्राप्त होने के एक सप्ताह के अन्दर लेखक को स्वीकृति पत्र प्रेषित कर दिया जायेगा। ई-मेल से प्राप्त शोधपत्र हेतु ई-मेल से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोधपत्र प्रेषित करने के पूर्व प्रधान सम्पादिका से दूरभाष पर अवश्य सम्पर्क करें। सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति में सम्मिलित करने का अंतिम निर्णय संस्था का होगा।

सदस्यों से निवेदन है कि वर्ष में 20 सदस्य पत्रिका से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।

Other MPASVO Journals

Saarc: International Journal of Research
(Six Monthly Journal)
www.anvikshikijournal.com

Asian Journal of Modern & Ayurvedic Medical Science
(Six Monthly Journal)
www.ajmams.com

IJRA
www.onlineijra.com

ISSN 0973-9777
09739777
₹ 1200/-